दो शब्द

एक समय था -- था नहीं, अब भी बहुत-कुछ है---जब हमारे देश के अधिकतर पढ़े-लिखे अँगरेजीदाँ लोग स्वयं तो अँगरेजी वेष-भूषा और चालचलन रखते ही थे। अपने घर की बहू-बेटियों को भी एक मेम बना देना फख्र की बात समझते थे। इसके सिवा यहाँ ज्ञान-गरिमा और स्वदेश-प्रेम में बड़प्पन नहीं माना जाता था, सरकारी नौकरी से लोगों की इज्जत नापी जाती थी। इस उपन्यास के विद्वान लेखक ने इन्हीं दोनों कमजोरियों का चित्रण किया है. और बड़ी खूबी के साथ किया है। केवल चित्रण ही नहीं किया, उपन्यास की नायिका अरुणा के कारनामे से इन प्रवृत्तियों का तिरस्कार कराकर ऐसे विदेशी भावापन्न लोगों की आँखें खोलने का प्रयास भी किया है। उपन्यास की रोचकता आदि से अन्त तक कहीं फीकी नहीं पड़ने पाई है। वक्तव्य विषय का विश्लेषण और लक्ष्य का प्रतिपादन अनूठे ढंग से किया गया है।

मैंने यथाशक्ति मूल-भाषा का रस और सौष्ठव हिन्दी में भी लाने की चेष्टा की है। मूल उपन्यास से मिला कर यह अनुवाद पढ़ने वाले मेरे परिश्रम को समझ सकेंगे। मुझे आशा है, इस उपन्यास का यथेष्ट प्रचार और आदर होगा।

रानी कटरा,
लखनऊ
२५—१०—५०

विनीत
रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक—

हरनामदास गुप्ता

अध्यक्ष—

हिन्दी साहित्य-मण्डल

बाजार सीताराम, देहली।

: १ :

शौक़ीन समाज के ऐसे आदमी कम ही होंगे, जो मिसेज़ मलहोत्रा के फ़िनिशिंग स्कूल का नाम न जानते हों। किसी परियों के क़िस्से की राजपुरी से उड़ कर आई हुई-सी नई दिल्ली की एक सड़क के किनारे कई एकड़ ज़मीन में इस स्कूल का बाग़, कॉलेज और बोर्डिङ्ग-हाउस है। इस देश के लिए इस ढंग का स्कूल एक नई चीज़ है। कॉलिज की पढ़ाई समाप्त करने के बाद यहाँ शौक़ीन, अर्थात फैशनेबुल और अपने को ऊँचे दर्जे का आदमी प्रसिद्ध करने की इच्छा रखने वाले माता-पिता अपनी लड़कियों को 'फ़िनिशिंग टच' दिलाने के लिए, नई सभ्यता का पॉलिश कराने के लिए, आधुनिक रीति-नीति, शिष्टाचार और रहन-सहन की शिक्षा सम्पन्न कराने क लिए, यहाँ भेजा करते हैं। किसी भी जाति और वर्ण की कोई भी लड़की मिसेज़ मलहोत्रा से यह दुर्लभ पॉलिश प्राप्त कर सकती है। मगर हाँ, इसके लिए जितना धन ख़र्च करना पड़ता है, उतना धन सब माता-पिता नहीं ख़र्च कर सकते। इसलिए इने-गिने अधिक धनी लोग ही यहाँ अपनी लड़कियों को भेजते हैं। मतलब यह, कि यहाँ पर

लड़कियों को शिक्षा दिलाना हर एक के बूते की बात नहीं है। इससे इस स्कूल का गौरव बढ़ता ही है, घटता नहीं। फिनिशिंग स्कूल की पॉलिश के लिये सर्व-साधारण की श्रद्धा और उसकी प्रसिद्धि क्रमशः बढ़ती ही जा रही है।

मिसेज मलहोत्रा एक अंगरेज महिला हैं। किन्तु इङ्गलैण्ड गये हुए एक भारतीय विद्यार्थी से ब्याह करने के बाद से वह भारतीय बन गई हैं। जब से वे भारत में आईं, तभी से साड़ी पहनती हैं, सिगरेट पीना छोड़ दिया है, और भारत की प्रधान-प्रधान भाषायें सीखने की चेष्टा करती रही हैं। बहुत दिनों से भारतीय, और ऐंगलो-सैक्सन संस्कृतियों को मिला कर एक नई संस्कृति तैयार करने की उनकी इच्छा है। मिस्टर मलहोत्रा की मृत्यु के पहले सर्व-साधारण में इस अभिनव संस्कृति के प्रचार का यथेष्ट सुयोग उन्हें नहीं मिला था। मि० मलहोत्रा लाहौर में बैरिस्टरी करते थे। भारतीय संस्कृति को पूर्ण रूप से त्याग देने में ही उन्हें आनन्द प्राप्त था। वे ऐसे कट्टर साहब बन गये थे, कि उनकी अंगरेज स्त्री भी उन्हें साहब ही समझने लगी थी। अतएव अपने को स्वामी के अनुरूप बनाने के लिए वे मजबूर थीं और इसी कारण उस समय पूर्ण रूप से भारतीय नारी नहीं बन सकी थीं।

मि० मलहोत्रा के कोई सन्तान नहीं हुई। उनके मरने के बाद उनकी स्त्री लूसीना मलहोत्रा अपने जीवन की साध को पूरी करने में अपनी इच्छा को एक रूप देने में लग गईं। एक अंगरेज

महिला के भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग अथवा आग्रह में अच्छा-खासा आकर्षण था। इसके सिवा धनी और ऊँचे दर्जे के समाज के लिये मिसेज मलहोत्रा सुपरिचित थीं। धन एकत्र करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई।

मिसेज मलहोत्रा बुद्धिमती और अच्छी समझ-बूझ रखने वाली महिला थीं। उन्होंने नई दिल्ली में अपने काम का केन्द्र स्थापित किया, और यह फ़िनिशिंग स्कूल खोला। बड़े लोगों की सरपरस्ती नई दिल्ली से बढ़ कर और कहाँ मिल सकती थी? फ़ैशनेबुल धनी लोगों की लड़कियाँ भी यहाँ काफ़ी मिल सकती थीं। मिसेज मलहोत्रा का फ़िनिशिंग स्कूल कुछ ही वर्षों में खूब चल निकला।

सन् १६४० का सितम्बर का महीना है। मिसेज मलहोत्रा के फ़िनिशिंग स्कूल में 'कुकरी' अर्थात् खाना पकाना सिखाने का क्लास लगा है। नौ-दस लड़कियाँ उपस्थित हैं। साड़ी, स्कर्ट, शलवार सभी तरह के पहनावे देख पड़ते हैं। उस घर का एक ओर का हिस्सा आदि से अन्त तक शीशे का है। उसके शीशों से सबेरे की धूप भीतर आकर, लड़कियों में से किसी के मुँह पर, किसी के बालों पर और किसी की साड़ी की किनारी पर पड़ रही है। बाहर के बाग़ में तरह-तरह के फूल खिले हुए हैं। भीतर का समारोह भी कुछ कम रंगीन नहीं है।

खाना पकाने की शिक्षका मिसेज खंडेलवाल उपदेश दे रही थीं—"कभी खुले चूल्हे के पास न जाना। वह स्वास्थ्य और

सौन्दर्य दोनों को हानि पहुँचाता है। इसके सिवा खुले चूल्हे में एक बहुत बड़ी असुविधा यह है, कि उसकी आँच का अधिकांश निकल जाता है। यह बहुत बड़ा नुक़सान है। फ़िजूल आँच को बर्बाद करना ठीक नहीं। यह एक फ़िजूल-खर्ची है।... अरुणा, तुम बाहर क्या देख रही हो? पढ़ने के समय उधर मन लगाना उचित नहीं है।"

अरुणा ने चौंककर, और बाहर से नजर हटा कर, मिसेज खंडेलवाल की ओर कर ली। फिर मुसकराते हुए, कहा—"मुझे अफ़सोस है, मैडम!"

मिसेज खंडेलवाल इस कैफ़ियत से असन्तुष्ट हो कर बोलीं—"तुम तो इस एक घंटे में कम-से-कम दस दफ़ा अफ़सोस जाहिर कर चुकी हो। केवल अफ़सोस जाहिर करने से ही तो त्रुटि का संशोधन नहीं होता।...हाँ, क्या कह रही थी मैं, खुले चूल्हे में खाना पकाना ठीक नहीं। खुला चूल्हा किसी काम का नहीं होता। खाना पकाने के लिये सब से पहले जरूरत होती है एक अच्छे..."

"गैस रेंज की," अरुणा ने गंभीर हो कर, मिसेज खंडेलवाल का वक्तव्य स्वयं पूरा कर दिया।

मिसेज खंडेलवाल ने उस से भी अधिक गंभीर हो कर कहा—"हाँ, 'गैस रेंज' की। लेकिन मैंने तुमसे नहीं पूछा था, अरुणा। मैं शिक्षा दे रही हूँ, शिक्षा ले नहीं रही हूँ। बे मतलब जानकारी प्रकट करने में कोई बहादुरी नहीं है।"

अरुणा ने उसी तरह गंभीर बन कर कहा—"मुझे अफ़सोस है।"

अरुणा लेजिस्लेटिव एसेम्बली के बंगाली सदस्य प्रभास राय चौधरी की कन्या है। राय चौधरी महाशय धनी और विद्योत्साही पुरुष हैं। गत बार एसेम्बली के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए जब वे आये, तब उनकी मिसेज़ मल्होत्रा से मुलाक़ात हुई थी। उसी समय मिसेज़ मल्होत्रा ने उनको भी, अपनी भारतीय आदर्श से प्रीति प्रकट कर के, मुग्ध कर लिया। राय चौधरी साहब ने मिसेज़ मल्होत्रा के कहने से अपनी ग्रेजुएट कन्या अरुणा को उनके फ़िनिशिंग स्कूल में खुशी से भर्ती करा दिया। अरुणा इस स्कूल में भर्ती होना नहीं चाहती थी। कलकत्ते में उसने मिशनरी स्कूल और कॉलेज में पढ़ा है। इन लोगों के आदर्श पर वह कभी प्रसन्न नहीं रही। लेकिन भारतीय आदर्श की दोहाई ने उसकी युक्तियों को बहुत-कुछ खंडित कर दिया, और पिता की विशेष इच्छा से वह एक वर्ष के लिए मिसेज़ मल्होत्रा के स्कूल में फ़िनिश लेने को राजी हो गई।

मिसेज़ खंडेलवाल अपना पाण्डित्य बघारती हुई, वक्तृता देने लगीं—"बंगाली लोग रसोई में सरसों के तेल का, मदरासी लोग नारियल के तेल का, यू० पी० वाले और गुजराती घी का इस्तेमाल करते हैं। ये सभी चीजें कुछ-न-कुछ खराबी पैदा करने वाली हैं। सरसों का तेल पाकस्थली को हानि पहुँचाता है, नारियल के तेल में दुर्गन्ध होती है, घी बहुत महँगा पड़ता है,

और उससे अपच हो जाता है। मैं एक तेल की जाति की चीज जानती हूँ, जिसमें यह कोई बुराई नहीं है। वह चीज है..."

अरुणा हल्की आवाज में कह उठी—" 'लर्ड' (सुअर की पिघलाई हुई चर्बी)।"

मिसेज खंडेलवाल का धैर्य जाता रहा। उन्होंने कहा—"हाँ, लर्ड, लर्ड! एक सौ दफा मैं कहूँगी लर्ड! मिस अरुणा, बोलो, कौन पढ़ रहा है? तुम या मैं? अगर तुम्हीं पढ़ाओगी, तो फिर मेरी क्या जरूरत है? मैं इस बारे में मिसेज मल्होत्रा से शिकायत करने के लिए लाचार हूँगी। तुम सिर्फ मन ही नहीं लगातीं, बल्कि..."

अरुणा ने मुख पर हँसी का लेश भी न आने दे कर, गंभीर भाव से कहा—"मुझे अफसोस है!"

"अफ़सोस! अफ़सोस! यह भी कोई तमाशा है।" कह कर, हाथ की किताब फेंक कर, टेबिल पर एक घूँसा मार कर, और जमीन पर पैर पटक कर, मिसेज खंडेलवाल तेजी के साथ वहाँ से चल दीं।

लड़कियाँ खिलखिला कर हँसने लगीं।

उमा अरोड़ा ने दौड़ कर, अरुणा के गले में एक हाथ डाल कर कहा—"अरुणा, तू वाण्डरफुल, सिंपली वाण्डरफुल (अद्भुत और निराली) है। मुझ में साहस नहीं है, नहीं तो मैं भी यही करती। रोज-रोज वही बात—गैस रेंज, लर्ड और विनिगर (सिर्का)!"

मालती सक्सेना ने कहा—"भई, एक दिन लार्ड से छौंक कर उसे लौकी की तरकारी खिलाई जाय !"

सुमति मीरचंदानी ने कहा—"और गैस रेंज में सेंक कर चपाती।"

उमा ने कहा—"कहीं वह सचमुच मिसेज मल्होत्रा से शिकायत करने तो नहीं गई ?"

"जायगी, तो क्या होगा ?" कह, अरुणा उठ खड़ी हुई, और जम्हाई के साथ अंगड़ाई ली। फिर कहा - "चलो, जरा बाग में टहल आयें। कै सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हैं। मैं जब से यहाँ आई हूँ, तभी से वे जैसे हिल-हिल कर इशारे से मुझे बुला रहे हैं।"

मालती ने कहा—"फूल बाग में चल कर जरा अपना नाच दिखाओगी, बहन अरुणा ? फूलों के बीच नाचने में तुम बहुत अच्छी मालूम पड़ोगी। यह जरूर है कि वहाँ तालियाँ पीट कर तुम्हारा अभिनन्दन करने वाली पबलिक नहीं होगी, लेकिन प्रशंसा तो तुम अनेक बार पा चुकी हो।"

अरुणा ने कहा—"यह भी खयाल है कि दस मिनट बाद ही स्वास्थ्य का क्लास है ? और एक घंटे की क़ैद ! वही 'खुली हवा में रहो। मोटर पर बैठ कर रोज तीसरे पहर घूमने जाओ। रात को सूप, टोस्ट, और पुडिंग के सिवा कुछ न खाओ। सोने के पहले दस मिनट तक भगवान् की प्रार्थना करो। लेकिन उसके पहले चेहरे पर कोल्ड क्रीम मलना न भूलो। हफ्ते में एक दिन जुलाब'...."

उमा ने कहा—"तू होपलेस है, अरुणा ! तेरे सुधार की कोई आशा नहीं । जो मुँह में आता है बक जाती है । दोहाई है तेरी, बस चुप रह ! अब और आगे न बढ़ ।"

अरुणा ने कहा—"ये लोग भी मुझे और आगे नहीं बढ़ने देंगे ।"

हँसी करते हुए, उमा ने कहा—"ये लोग कौन ? मिस्टर मीरचन्दानी, मि० सिंह, मि० बनर्जी, मि० श्रीवास्तव, ये लोग तो नहीं ? मेरे बड़े भाई साहब भी बहन तेरा ही नाम रटा करते हैं । सच बता, क्या तू कोई जादू जानती है ? हम लोगों को तो, बहन, एक भी भक्त नहीं नसीब होता ।"

अरुणा ने गंभीर हो कर, कहा—"ये लोग, और और भी अनेक भक्त तुम लोगों का भजन करें ! मैं एक विज्ञापन देकर, इन लोगों पर अपना स्वत्व त्याग दूँगी । इन लोगों के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी कौतूहल नहीं है ।"

उमा ने कहा—"तो बता, किस के सम्बन्ध में है ।"

"तेरे सम्बन्ध में," कह कर, अरुणा ने उमा के गले में हाथ डाल दिया ।

: २ :

उमा अरोड़ा के पिता दिलीपचन्द अरोड़ा सप्लाई विभाग में कन्ट्रोलर हैं। अशोक रोड पर उनके घर के लान में एक बड़ा-सा रंगीन छाता लगा हुआ है। उसके नीचे चारों ओर कई बेंत की कुर्सियाँ और मोढ़े पड़े हुए हैं। उनमें से अधिकांश पर तड़क-भड़क वाले नर-नारी विराजमान हैं। एक तरफ़ एक लंबा टेबिल रक्खा है। उसके ऊपर सफ़ेद टेबिल-कवर पड़ा है। उस टेबिल पर सैंडविच, पेस्ट्री, दालमोट, कराची हलवा आदि कई प्रकार की बढ़िया खाने-पीने की चीज़ें रक्खी हैं। मिस्टर और मिसेज़ अरोड़ा भी चारों ओर घूम-घूम कर, अतिथियों से बात-चीत कर रहे हैं।

उमा सिल्क की शलवार और लंबी क़मीज़ पहने है, और कन्धे पर लापर्वाही के साथ रंगीन दुपट्टा पड़ा है। पैरों में ऊंची एड़ी के जूते हैं। मालती सक्सेना, सुमति मीरचन्दानी और अन्य कई सखियाँ एक टेबिल के चारों ओर भीड़ लगाये बैठी हैं। उमा बार-बार सड़क की ओर उत्सुक दृष्टि से देख रहीं है। उमा के घर की गाड़ी अरुणा को लाने के लिये गई है। लगभग एक घंटा हो चुका है, पर अभी तक अरुणा को ले कर नहीं लौटी।

अन्त में उमा ने हताश होकर कहा—"देखो, भाई, अरुणा की हरकत ? मैंने जल्दी आने को कहा था, इसी से और भी देर कर रही है !"

सुमति ने कहा—"जान पड़ता है, वह सजावट और सँवार-सिंगार से सब की आँखें चौंधिया देगी। बंगाली लड़कियों की साज-सज्जा पूरी ही नहीं होने पाती। उनका साड़ी पहनने का ढंग हमने तो कराची में बैठे-ही-बैठे उनसे भी अच्छी तरह सीख लिया है।"

मालती ने कहा—"लखनऊ कलकत्ते ही के निकट होने के कारण शायद में अब तक उसका अभ्यास नहीं कर सकी। बाईं तरफ़ जैसे एक अनावश्यक सिकुड़न आ जाती है। मिसेज़ मल-होत्रा भी साड़ी पहनना सिखाने के लिए अगर अलग एक क्लास खोल दें, तो अच्छा हो। क्यों, उमा, तेरी क्या राय है।"

उमा ने ज़रा हँसकर, कहा—"इससे तो यह अच्छा है, कि शलवार पहना करो। सब झगड़ा ही मिट जाय।......लेकिन गाड़ी अभी तक क्यों नहीं लौटी ? क्या बात है ? अरुणा क्या पार्टी खतम हो जाने के बाद आयगी ? अब तो मेरा धीरज जा रहा है। जाऊँ, ज़रा टेलीफ़ोन कर के दर्याफ्त करूँ।" कह कर उमा उठ खड़ी हुई, और मेहमानों के बीच हो कर, दालान की ओर चली, जहाँ पर टेलीफ़ोन था।

रास्ते में मि० श्रीवास्तव ने टोका—"नमस्ते, मिस अरोड़ा !"

"नमस्ते, मि० श्रीवास्तव।"

"आप सब एक किनारे जा कर जमा हैं। हम लोगों का बाईकाट करने का विचार है क्या ?"

उमा ने कहा—"नहीं, साहब, ऐसा तो कोई विचार नहीं है अभी। आप चाहें, तो हम लोगों की पार्टी में शरीक हो सकते हैं।"

श्रीवास्तव ने पूछा—"आपकी वह बंगालिन सहेली कहाँ है ?"

"उसने कहला भेजा है, कि नहीं आयेगी।"

"ओह, यह बात है !" श्रीवास्तव का उत्साह कुछ कम हो गया। बोला—"शायद आपको कोई काम है ?"

"जी हाँ," कह कर, मन-ही-मन हसती हुई, उमा आगे बढ़ गई।

आगे बनर्जी ने टोका—"गुड ईवनिंग, मिस अरोड़ा !"

"नमस्ते, बनर्जी साहब ! आप बंगाली लोग बड़े प्राउड (घमंडी) होते हैं !"

बनर्जी ने विस्मित हो कर, कहा—"यह आप क्या कह रही हैं, मिस अरोड़ा ? मुझे आपने कब घमंड करते देखा ?"

"आप न सही, लेकिन आपके बंगाल की लड़कियाँ तो घमंड के मारे जमीन पर पैर नहीं रखतीं। अरुणा को ही देखिए उसने इतनी देर क्यों की ?"

बनर्जी ने पूछा—"क्या अरुणा देवी आ रही हैं ?"

"हाँ, वरमाला हाथ में ले कर !" कह कर, शरारत की हँसी हँस कर, उमा आगे बढ़ गई।

मिस्टर मीरचंदानी ने टोका—"जरा इधर देखिएगा, मिस अरोड़ा ?"

"नमस्ते, मिस्टर मीरचंदानी ! निश्चय ही देखूंगी। आपके बटन-होल का फूल तो बड़ा खूबसूरत है।"

"मैं खुशी के साथ इसे दे सकता हूँ।"

उमा ने शरारत के साथ कहा—"लेकिन अभी अरुणा तो आई नहीं। किसे दीजियेगा ?"

"आप क्या मुझे बना रही हैं ?" मीरचंदानी ने कहा।

"आप जोक (हँसी) और बैंटर (खिल्ली उड़ाना) का भी अंतर नहीं जानते !" कह कर, मुसकराती हुई, उमा आगे बढ़ी।

आगे मि० सिन्हा मिले। उमा ही कह उठी—"ना, मिस्टर सिनहा, अरुणा अभी नहीं आई !"

मिस्टर सिन्हा अर्थात् अर्जुन सिन्हा कुछ भड़क उठा। बोला—"इसके क्या माने ?"

उमा ने हँसकर, कहा—"प्रश्न करने के पहले ही उसका जवाब दे देने में कोई बुराई है क्या ?"

अरुणा के प्रति भारत सरकार के इन युवक अफसरों के इस अद्भुत और असंगत आग्रह को देख कर, उमा पहले अवश्य कुछ खीझ उठती थी। उसके भीतर की युवती नारी को अपने अनजाने में ही, इससे एक चोट-सी लगती थी। इसमें से अधिकांश युवक पहले उसी के रूप के पुजारी थे। किन्तु अरुणा जब से आई है, तब से इन लोगों की उमा के ऊपर भक्ति कुछ कम हो गई है, और इस बात

को उमा किसी तरह अस्वीकार नहीं कर सकती। लेकिन जब उमा ने देखा, कि यह नई देवी अरुणा, इन भक्तों की ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं देती, तो वह अपने लड़कपन का अनुभव कर के, लज्जित हो उठी। अपने भक्त जनों की भक्ति कम होते देख कर, उसने मन में जो खेद और खीझ पैदा हुई थी, वह एकदम जाती रही। अरुणा के प्रति मन में पहले जो एक विरोध का भाव पैदा हो गया था, वह भी जाता रहा। केवल यही नहीं, अरुणा का अपने नवीन भक्तों के प्रति जो व्यंग्य-पूर्ण दृष्टिकोण था, उसे देख कर वह भी आज-कल नई दिल्ली की इस फैशन परस्त युवक-मण्डली के आग्रह और बनावटी प्रदर्शन के ऊपर सतर्क दृष्टि डालना सीख गई है। अरुणा के ऊपर उमा की श्रद्धा और प्यार बहुत बढ़ गया है। यह वह जानती थी, कि बंगाली लोग व्यंग्य करने में बेजोड़ होते हैं और छींटाकशी करने की कला में भी निपुण होते हैं, किन्तु पहले वह यह सोच ही नहीं सकती थी, कि इस तरह लापरवाही के साथ सभी से व्यंग्य किया जा सकता है।

ड्राइंग-रूम के दरवाजे के सामने आ कर, उमा रुक गई। भीतर उसका बड़ा भाई, कुशल चन्द, टेलीफोन पर बात कर रहा था।

"हलो! रवाना हो गई हैं? कितनी देर हुई? यहाँ सब लोग उनकी राह देख रहे हैं। ठीक है। रवाना हो गई है, तो फिर आती ही होंगी। धन्यवाद!"

उमा ने भीतर जा कर पूछा—"किसे टेलीफ़ोन कर रहे हैं, भाई साहब ?"

कुशलचंद ने चौंक कर, कहा—"कौन ? उमा ! अरे, तुम लोगों के कॉलिज को ही टेलीफ़ोन किया था। पूछ रहा था, कि तेरी सहेली कब आयेंगी। कितनी देर हो गई, वह अभी तक नहीं आई।"

उमा ने कहा—"मेरी सहेली के बारे में तुम्हारा मुझसे भी अधिक आग्रह देख पड़ता है, भाई साहब !" उमा के चेहरे पर शरारत की खुली हँसी खेल रही थी।

कुशलचंद ने कहा—"मुझे क्या ? मैं तो तुम्हीं लोगों को आकुल, चिन्तित देख कर......"

उमा बीच ही में कह उठी—"तुम खुद तो आकुल नहीं हो उठे हो ?"

'नाटी गर्ल !" कह कर, कुशलचन्द आडंबर के साथ लेफ्ट अबाउट टर्न कर के, दरवाजा खोल कर, बाहर निकल गया।

कुशलचन्द ने ग्लासगो में इंजीनियरी की परीक्षा पास की है। यहाँ सरकारी इंजीनियर है। पिता की कोशिश और पंजाबी अफ़सरों की पृष्ठ-पोषकता से हाल में ही सेंट्रल पी० डब्लू० डी० महकमे में उसे स्थायी नौकरी मिल गई है। छः फुट लंबा जवान है। शरीर सुगठित और सुडौल है। दिन-रात उमंग से उबलता रहता है। विलायत में एक अँगरेज युवती से ब्याह करने को आमादा हो गया था बड़ी मुश्किल से वह ब्याह रोका जा

सका। आत्मीय, स्वजनों के पूछने पर, कुशलचन्द कहता है—"पंजाबी लड़कियों की बात मेरे सामने न करो। लड़कियों को शलवार पहने देख कर मेरे सिर पर खून सवार हो जाता है!" लेकिन कुशलचन्द के सिर पर सवार खून की परवाह न करके, उमा रोज़, खास कर सामाजिक अवसरों पर, शलवार बराबर पहनती है। इसके लिए भाई, बहन में झगड़ा भी कम नहीं होता, खूब कहा-सुनी होती है।

उमा क्षण भर आँखें मूंद कर, मन-ही-मन हँसती रही। इसके बाद खुद बंद हो जाने वाला जाली का दरवाजा ठेल कर, बरामदे में आ खड़ी हुई। तभी गेट के भीतर उसके घर की बड़ी मोटर आती दिखाई दी। बिजली की तरह अरुणा की लाल साड़ी का आँचल एकाएक चमक उठा। साथ ही देखा गया, लॉन में बैठे हुए युवकों की गर्दनें लंबी हो उठीं। चेहरे पर अपार खुशी की झलक लिये हुए, उमा उत्तरीय का छोर उड़ाती और चलायमान चोटियों को हिलाती हुई, अरुणा के स्वागत के लिए दौड़ पड़ी।

: ३ :

मीरचंदानी ने कोमल स्वर में प्रश्न किया—"नई दिल्ली आप को कैसी लगती है ?"

अरुणा ने मीरचदनी की बहन, सुमति की ओर देखते हुए कहा—"बिलकुल रद्दी !"

श्रीवास्तव ने विस्मित हो कर कहा—"यह आप क्या कहती हैं ? इसे तो गार्डेन सिटी (बाग़ों का नगर) कहा जाता है।"

अरुणा ने मालती सक्सेना की ओर देखते हुए कहा—"कहते होंगे। काग़ज़ के फूल भी तो फूल ही कहलाते हैं। क्यों मालती, कहलाते हैं न ?"

मालती सक्सेना ने जरा हँस कर, पैरों के नीचे की दूब को जूते की तली से घिसते हुए, कहा—"यह भी क्या काग़ज़ की बनी है ?"

अरुणा ने कहा—"यह चाँदी की है। जानती हो, मरुभूमि में हरयाली बनाये रखने के लिये कितने रुपये खर्च होते हैं।"

अब की बनर्जी साहब बोल उठे—"लेकिन लालन-पालन में अधिक रुपये खर्च होते हैं, इस लिए क्या बड़े आदमियों के

बच्चों को क्या बच्चे न कह कर, और कुछ कहा जाता है, अरुणा देवी ?"

अरुणा ने गंभीर हो कर, उमा की ओर देखते हुए कहा—"उन्हें बेबी कहा जाता है। है न उमा ?"

उमा ने न रोकी जा सकने वाली हँसी से नाक फुला कर कहा—"हाँ, जी। हमारे क्लास में तो यही सिखाया गया है!"

दोनों सखियों के परिहास का ढंग यही है। युवक मंडली कुछ हताश हो गई। इस तरह व्यंग्य की तलवार सब समय ताने रहने पर, बात-चीत कैसे जम सकती है ? मगर इसमें भी सन्देह नहीं, कि इससे शस्त्रधारिणी का आकर्षण और भी अधिक बढ़ जाता है।

श्रीवास्तव ने कहा—"लेकिन दिल्ली की एक विशेषता को आप अस्वीकार नहीं कर सकेंगी, मिस राय चौधरी। वह है इसकी कास्मोपॉलिटन (सार्वभौमिक) आब-हवा। विभिन्न प्रदेशों के नर-नारियों का ऐसा जमघट इस देश में और कहाँ होता है ?"

नख को नख से खुरचते हुए, अरुणा ने कहा—"न होने से भी कुछ बनने-बिगड़ने का नहीं।"

जिसमें अरुणा के मन को चोट न पहुँचे, इस तरह कहा मीरचंदानी ने—"तो क्या आप प्रदेशों की अलग-अलग सीमा मानती हैं ?"

अरुणा ने कहा—"निश्चय ही। विभिन्न जाति भी मानती हूँ, तो विभिन्न प्रदेश क्यों न मानूंगी ?"

अर्जुनसिंह ने बीच से दो हिस्सों में बँटी हुई अपनी तरुण दाढ़ी पर हाथ फेरते-फेरते, पीछे से गर्दन बढ़ा कर, कहा—"जाति भेद मानना क्या मन की संकीर्णता का परिचय देना नहीं है ?"

अब तक चुप रहने के कारण उसे यह आशंका हो रही थी, कि वह इन वाचाल युवकों के नीचे छिपा जा रहा है। उसने शायद अपने को जाहिर करने के लिये ही यह बात कही थी।

अरुणा ने गंभीर बन कर कहा—"यह बात ठीक है। लेकिन दुःख की बात तो यह है, कि फिर भी जाति-भेद माना जाता है, और नई दिल्ली का आधुनिक समाज जितना जाति-भेद को मानता है, उतना बंगाल के भाटपाड़ा (कट्टर-पंथी पुराने पंडितों का प्रसिद्ध स्थान) के ब्राह्मण भी नहीं मानते !"

"कैसे, कैसे ?" श्रीवास्तव को फिर बड़ा विस्मय हुआ। मीरचंदानी उदारता के साथ कह उठा—"मैं तो जाति-भेद नहीं मानता। मुझ में प्रादेशिक संकीर्णता भी नहीं है।"

सिन्हा अर्थात् अर्जुनसिंह ने कहा—"सिखों में जाति-पाँति का विचार कभी नहीं रहा।"

अरुणा ने कंधे को टेढ़ा कर के गर्दन से मिलाते हुए कहा—"नई दिल्ली में जब आदमी आता है, तब पुराने विचारों को तिलांजलि दे कर आता है। यहाँ तो केवल दो जातियाँ हैं—अफ़सर और किरानी (क्लर्क)। किरानी अफ़सर के लिए अछूत हैं। लेकिन दोनों में फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि और सब बातें एक-सी होने पर भी, एक अधिक तनख्वाह पाने वाला नौकर है और

दूसरा कम वेतन पाने वाला नौकर। नौकर दोनों हैं, क़लमें दोनों घिसते हैं। फिर इन दोनों मूल जातियों के भीतर उपजातियों का भी अभाव नहीं है। सरकारी मकानों का आकार-प्रकार या टाइप देख कर ही जाना जा सकता है, कि कौन किस जाति का किरानी है, और कौन किस जाति का अफ़सर। सारे विश्व के आगे आडम्बर के साथ इस विभेद की बात का ढिंढोरा पीट कर नई दिल्ली अपनी विशेषता की रक्षा कर रही है। अतएव यह उदारता की बात न उठाना ही अच्छा होगा। क्यों उमा, है न ठीक ?"

मीरचंदानी ने हाँपते-हाँपते कहा—"आप बोलशेविक हैं, मिस राय चौधरी ?"

श्रीवास्तव ने अफ़सरों के पद-गौरव में कमी होने की संभावना से आतंकित हो कर कहा—"अफ़सर और किरानी में केवल वेतन का ही अन्तर नहीं है, क्षमता की दृष्टि से भी अन्तर है।"

बनर्जी ने दार्शनिक का-सा गर्व दिखाते हुए कहा—"अन्तर तो दुनिया में हमेशा ही रहेगा, अरुणा देवी। क्षमता के अनुसार ही ..."

अरुणा ने निर्लिप्त भाव से मिनती नाम की लड़की की ओर देखते हुए, कहा—"बाप, जेठ, ससुर, ये सब पद जैसे होते हैं। ठीक है न, मिनती ?"

मीरचन्दानी ने सन्नाटे में आ कर कहा—"माई गॉड ! निश्चय ही आप बना रही हैं....यह क्या, मिस अरोड़ा ? आप इस तरह हँस क्यों रही हैं ? हेवेन्स ! यह मजाक़ कुछ मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

सुमति ने खड़ी हो कर कहा—"रहने दो दादा, तुम्हारे समझने की जरूरत नहीं। तुम लोग अपनी कुर्सियाँ जरा पीछे हटा लो। हम लोग भीतर जायँगी।"

बनर्जी से लेकर मि० सिन्हा तक सभी ने समझा, कि तर्क कर के वे कुछ विशेष सुविधा नहीं कर सके, अपना रंग नहीं जमा सके। यही होता, तो कोई वैसी बात न थी; लेकिन इस लड़की की बातों में जो एक तीखी धार होती है, इसके व्यंग्य में जो एक चुटीलापन होता है, उसकी उपेक्षा करना भी तो सहज नहीं। यह कहती है, कि उन लोगों में और साधारण क्लर्कों में कोई फ़र्क़ नहीं है। ख़ास राजधानी नई दिल्ली में भारत सरकार के अफ़सरों का ऐसा अपमान करने का साहस किसने किया है ? यह कहती है, कि उनका यह पद-गौरव भी उनकी क्षमता, उनकी योग्यता का पुरस्कार नहीं है। यह पृष्ठ-पोषकता के, सिफ़ारिश के जोर से उनको मिला है ! पहले तो वे क्षुब्ध हुए, क्रोधित भी हुए। किन्तु बुद्धि ने बिलकुल उनका साथ नहीं छोड़ा था। उन्होंने अपने मन में यह तय किया, कि ऐसी अविश्वसनीय बात केवल औरतों ही के मुंह में शोभा पाती है। उनमें बुद्धि ही कितनी होती है ?

मीरचंदानी ने नाक से सिगरट का धुआँ छोड़ कर कहा—"बड़ी ही बुद्धिमती और होशियार लड़की है। हीरे का-सा तेज झलकता है इसके चेहरे से !"

मि० सिंह ने बाईं आँख जरा झपका कर कहा—"हीरा बड़ा क़ीमती होता है, मि० चंदानी। इसके सिवा उसमें चमक और विष एक साथ मिला होता है। क्यों मि० श्रीवास्तव, ठीक है न ?"

श्रीवास्तव ने कहा—"चलो, भाई, हम लोग भी ड्राइंग रूम में चल कर रौनक़ अफ़रोज़ हों। अनुरोध करने से क्या मिस राय चौधरी जरा देर नाचने को राजी न होगी ? तुम ने सर ब्रजनाथ की पार्टी में उसका नाच देखा था, मि० सिन्हा ?"

सिन्हा ने सामने की कुर्सी पर पैर फैलाते हुए कहा—"नाच की अपेक्षा उसकी ठोकरों से ही मेरा अधिक परिचय है। मि० बनर्जी, जी-जान से लग जाओ। तुम्हें तो एक इनीशियल एडवांटेज प्राप्त है। तुम भी बंगाली हो। बंगाली-बंगाली एक होते हैं।"

बनर्जी ने हँस कर, कहा—"लातों की मार सहने में कोई तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकेगा। तुम्हारी छाती का पाट कितना है।"

श्रीवास्तव ने इस पर टिप्पणी करते हुए, कहा--"तब तो हार्ट-ब्रेक करना असंभव है। मा भैः (मत डरो), मि० सिन्हा।"

: ४ :

अक्तूबर का महीना लग गया है। नये 'सीज़न' के लिए नई दिल्ली की सफ़ाई शुरू हो गई है। रास्तों के किनारों की घास को साफ़ किया जा रहा है। सड़कों पर माल से लदी मोटे-ताज़े बैलों वाली गाड़ियाँ दिखाई पड़ने लगी हैं। दुकानदार शिमला से दिल्ली लौट रहे हैं। कुछ ही दिनों में सरकारी कर्मचारी भी शिमला की ऊँचाई से नीचे उतर आयेंगे।

यह अद्भुत व्यवस्था बरसों से चल रही है। गर्मियां आने के साथ-साथ प्रधान-प्रधान कर्मचारी और उनके क्लर्क लोग कुर्सी, टेबिल, अलमारी, फाइल आदि का विराट् बोझ साथ लिये शिमला की यात्रा करते हैं। नई दिल्ली के अधिकांश फैशनेबुल दुकानदार भी उनका अनुसरण करने को बाध्य होते हैं। फिर जाड़ों के शुरू मे वे सब दिल्ली लौट आते हैं। इसमें जो धन और समय नष्ट होता है, वह सरकारी कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ने के कारण पूरा हो जाता है, ऐसा ऊपर के बड़े पदाधिकारी कहते हैं। किन्तु सर्वसाधारण लोग अवश्य ही इसे धन और समय की फ़िज़ूल-ख़र्ची मानते हैं, और विस्मय प्रकट करते हुए कहते हैं कि अगर दिल्ली की गर्मी इतनी असह्य होती है तो

फिर इतने रुपये ख़र्च कर के यहाँ राजधानी क्यों बनाई गई। जनसाधारण की इस टीका-टिप्पणी से अब तक शिमला जाने-आने में कोई असुविधा या बाधा नहीं हुई। किन्तु अब महायुद्ध छिड़ जाने से सरकार को भी यह व्यवस्था खलने लगी है। इस-लिए दुकानदार लोग भी यह आशा करते हैं, कि अगले साल सरकारी दफ्तरों का शिमला जाना बंद हो सकता है, और इस बेकार के ख़र्च से बच जायँगे।

ख़ैर, नई दिल्ली की चहल-पहल का मौसिम आ गया है, इस-में संदेह नहीं। जो दुकानें, रेस्तराँ और होटल गर्मियों में बंद हो गये थे, वे सब फिर खुल रहे हैं। गरम कपड़े धोने की दुकानों के विज्ञापन अक्सर दिखाई पड़ जाते हैं। जो अभागे किरानी सर-कारी क्वार्टर नहीं पायेंगे, वे खाना-पीना छोड़ कर, जी-जान से घरों के मालिकों और उनके दलालों के पास दौड़-धूप कर रहे हैं। नई दिल्ली में ग़ैर-सरकारी मकानों की संख्या बहुत ही कम है। इधर महायुद्ध के कारण भारत सरकार के नये-नये दफ्तर खुल रहे हैं, और नौकरों की संख्या बहुत बढ़ गई है। धूर्त्त मकान-मालिक अच्छी रक़म पैदा करने की चालें चल रहे हैं। किराया कंट्रोल के लिए एक मोटी तनख्वाह पाने वाला अफ़सर अवश्य है, किन्तु उसे अँगूठा दिखा कर, पैंतीस रुपये मासिक के किराये के मकान पचपन या साठ रुपये पर उठाये जा रहे हैं। इतना अधिक किराया होने पर भी, मकानों की छीनाझपटी चल रही है, और दंगा-फ़साद और मार-पीट तक की नौबत आ जाती है।

इस मौसम में दिल्ली की आब-हवा बहुत अच्छी होती है। गर्म लू का चलना बंद हो गया है, और बहुत सुहावनी, न अधिक गर्म और न अधिक ठंडी, हवा अभी से चलने लगी है।

सड़कों पर बहुत-से फ़ौजी वर्दी पहने आदमी दिखाई पड़ते हैं, और मिलिटरी लारियाँ विशालकाय दैत्यों की तरह इधर-उधर दौड़ती नजर आती हैं। सप्लाई डिपार्टमेंट का कलेवर बढ़ रहा है, और उसके कर्मचारियों की छावनी बनाने के लिए कई लाख रुपये मंजूर हुए हैं। गुजरे हुए सीज़न के बाद से नई दिल्ली का जीवन-प्रवाह शिथिल और वैचित्र्यहीन ढंग से आगे बढ़ता चल रहा था। किन्तु अब देर नहीं की जा सकती। गवर्नमेंट दिल्ली में आ रही है। अतएव किसी तरह युद्ध की कोशिश न दिखा सकने पर नई दिल्ली की 'सोसाइटी' मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहेगी।

देखते-देखते चँदा वसूल करने के लिए कई दिन कई सभायें करने की व्यवस्था हुई। कई फंड खोले गये। मिसेज़ मलहोत्रा ने अख़बारों की मार्फ़त यह विज्ञापित किया, कि युद्ध में अधिक सहायता पहुँचाने के लिये वे अपने स्कूल की लड़कियों के द्वारा एक 'चैरिटी पर्फ़ॉर्मेन्स' (सहायतार्थ नाटक) का आयोजन कर रही हैं।

मिसेज़ मलहोत्रा के फ़िनिशिंग स्कूल में रहने वाली लड़कियों के लिए रात के दस बजे सो जाने का नियम है। स्वास्थ्य और काम्प्लेक्शन (सौन्दर्य) की उन्नति के लिए ही यह व्यवस्था है। कुछ पहले सोने का घंटा बज चुका है। किन्तु उसकी उपेक्षा कर

के अरुणा अपनी सोने की कोठरी में कुशन-चेयर पर बैठी, एक किताब पढ़ रही है। रहन-सहन और खाने-पहनने से लेकर आँख मूंद कर प्रार्थना करने का बँधा हुआ नियम और समय उसे आपे से बाहर कर देता है। यहाँ का जीवन आँख मूंद कर जैसे एक मशीन की तरह चलता है। इसमें व्यक्तिगत स्वाधीनता तथा विचित्रता के लिए स्थान नहीं है। इस तरह स्नान करो, इस तरह दाँत मलो, इस तरह बाल बाँधो, इस तरह का खाना कांटा-चम्मच आदि की सहायया से इस तरह खाओ, प्रार्थना के समय इस तरह यह अन्तर्जातीय मंत्र पढ़ो, इस तरह का साहित्य पढ़ो, इन-इन निर्दिष्ट स्थानों में पिकनिक के लिए जाओ। अरुणा के मन में पहले ही से इन बँधे-सधे नियमों से भारी चिढ़ पैदा हो गई थी। स्कूल के संचालकों की इच्छा है, कि पूर्व और पश्चिम की अथवा भारतीय और ऐंग्लो-सैक्सन संस्कृति को एक में ढाल कर मिसेज मलहोत्रा ने जो एक नया साँचा बनाया है, उसी के एक-एक खाने में सब छात्रियों को अपने-अपने को बिठा लेना होगा। अरुणा ने अब तक इस इच्छा की कुछ कम मुखालफत नहीं की। कभी-कभी उसका यह विरोध सीमा से बाहर भी हो जाता था। लेकिन इसमें उसका कुछ दोष न था। नई दिल्ली की इस कृत्रिमता या बनावट का जो गहरा रूप वह हर घड़ी अपने चारों ओर देख पाती थी, उससे कभी-कभी उस का धीरज छूट जाता था। उसके मन में अपनी मुक्ति की यह छिपी हुई आशा थी, कि मिसेज मलहोत्रा उसके इस व्यवहार से, नियम का उल्लंघन

करने से शायद किसी दिन खीझ कर उसे बिदा कर देंगी। लेकिन मिसेज मलहोत्रा इतने सहज में हार मानने वाली नहीं थीं।

खिड़की और दरवाजे के शीशों पर पर्दों को अच्छी तरह खींच कर, पंखे की चाल कुछ धीमी करके, अरुणा कुर्सी पर आ बैठी। पीठ के नीचे कुशन रख लिया। गर्मी के कारण एक महीना पहले रात में इन कोठरियों में पैर नहीं रक्खा जाता था। फूलों के चमन में निवाड़ के पलँग डाल कर सब लड़कियाँ सोती थीं। सितम्बर समाप्त होते ही, उन्हें कोठरियों में सोने की आज्ञा हुई। कहा गया, कि अब ओस पड़ने लगी है, बाहर सोने से वे बीमार पड़ सकती हैं। खुले आकाश के नीचे फूलों की सुगंध सूँघते हुए सोने में जो आनन्द आता है, उसकी तुलना ही नहीं हो सकती। ऊपर के अधिकारियों की यह आज्ञा अरुणा को अत्यन्त असामयिक जान पड़ी। लेकिन जब और सब लड़कियाँ कोठरियों के भीतर सोने गईं, तब अकेली वह बाहर सोने की जिद कैसे कर सकती थी?

पेज-मार्क न जाने कब किताब से नीचे गिर गया। अरुणा उस जगह को, जहाँ तक पहले पढ़ चुकी थी, खोजने के लिए पन्ने उलट रही थी, लेकिन वह जगह मिल नहीं रही थी। अच्छा, किताब न पढ़ कर जागते-जागते कल्पना से अस्त-व्यस्त स्वप्न देखे जायँ, तो कैसा हो? दिल्ली के समान रहस्य से घिरी हुई, ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण जगह सारे भारतवर्ष में और कोई नहीं है। इतिहास के कितने ही रोयें खड़े कर देने वाले अध्याय

दिल्ली की धूल पर लिखे जा चुके हैं। उनमें से कितने ही अध्याय काल को गति से मिट गये हैं। दिल्ली का यह शौर्यमय युग अरुण को खूब आवेश से भर देता है। उस पर एक नशा-सा छा जाता है उसे याद करके। ऐतिहासिक स्मृति-चिह्नों के सहारे वह उस मुग़ल-युग में पहुँच जाती है, जिसमें तलवारों की झनकार सुन पड़ती है, और शौर्य-वीर्य की उज्ज्वल दीप्ति दिखाई देती है। वह रहस्य और आशंका से परिपूर्ण आब-हवा में पहुँच कर, अपने शरीर में रोमाँच का अनुभव करती है। किन्तु उसके बाद स्वप्न की अनुभूति दूर होने पर, वह उस बीते हुए युग का मूल्य आँकने बैठती है। तब मुग़ल-युग का सारा गौरव दूर हो जाता है, उसका वह रोमांच उत्पन्न कर देने वाला भाव किसी रोमांटिक उपन्यास की घटनावली की तरह मिथ्या जान पड़ता है। जिस शासन-तन्त्र में स्वेच्छाचारी सम्राट और उसके अपना मतलब साधने वाले अनुचर स्वार्थ-साधन को ही एक-मात्र उद्देश्य और कर्त्तव्य समझ कर, प्रजा को अपने हाथ का खिलौना बनाने में तनिक भी न हिचकते थे, उसके लिए अरुणा के मन में तनिक भी श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। हज़ारों आदमियों की सहायता और पराधीनता के ऊपर जिस व्यवस्था की नींव र-खी गई हो, उसके लिए गौरव करने की क्या बात है? इस गुलाम बनाने वाले शासन में आदमी का दम क्या घुटने नहीं लगता था? नई दिल्ली अवश्य ही इस समय भी गुलामों का शहर बनी हुई है।

अरुणा अपने मन में सोचने लगी—इसमें इस समय रहने वाले अधिकंश सरकारी दफ्तरों के किरानी या क्लर्क हैं, चार-पाँच हज़ार रुपये से लेकर साठ रुपये मासिक तक पाने वाले किरानी। तो भी मुग़ल-युग के लोगों में और इन किरानियों में क्या कुछ अन्तर नहीं है? अवश्य है। कोई सौ वर्ष के व्यवधान से इनमें एक विराट् परिवर्तन दिखाई दिया है। अब व्यक्ति की स्वाधीनता का अधिकार माना जाने लगा है। तब भी दिल्ली से मुग़ल-युग अब भी पूरी तौर से दूर नहीं हुआ। यहाँ के बाशिंदों के सोचने-बिचारने में, चाल-चलन में, बातचीत में, दफ्तर आदि में मुग़ल-युग का प्रभाव बेहद है। यह नई दिल्ली ग़ुलामी के इतिहास में ही तैयार हुई है। इसकी तुलना में कलकत्ता कितना स्वाधीन, कितना स्वच्छन्द, कितना उद्धत जीवनसे पूर्ण जान पड़ता है। लेकिन यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि इतिहास के लीला-क्षेत्र, विगत युग की बू-बास से भरी, विस्मृत काल की स्मृतियों से मण्डित इस महानागरी दिल्ली का एक अद्भुत मोह है।

ठक-ठक-ठक! बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया। अरुणा चौंक उठी। वह जो जागते-जागते सपना देख रही थी, वह टूट गया। आँखें उठा कर, सिर के ऊपर की रोशनी को ताक कर, लापरवाही के साथ कुर्सी से उठ खड़ी हुई। अब जवाबदेही करनी होगी। दस बजे के बाद जागते रहना साधारण अपराध नहीं है।

अरुणा ने दरवाज़ा खोल दिया। खुद डाइरेक्ट्रेस मिसेज मलहोत्रा भीतर दाखिल हुई। किसी तरह का सँवार-सिंगार न

होने के कारण, सहज ही यह दिखाई पड़ जाता है, कि उनकी अवस्था अधेड़ हो चली है। देखने में मोटी है। गोल-मटोल शरीर है। बाब-कट के बाल हैं। रात की पोशाक के ऊपर काश्मीरी काम का सिल्क का ड्रेसिंग गाउन पहने हैं। पैरों में चप्पल हैं।

मि० मलहोत्रा ने पूछा—"तुम अभी तक नहीं सोईं ?"

अरुणा ने कहा—"जी, नहीं।"

"क्या तुमने दस बजे का घंटा नहीं सुना ?"

"सुना था। लेकिन नींद नहीं आई।"

"लेकिन देखती हूँ, तुम किताब पढ़ रही थीं।" मिसेज मलहोत्रा ने तिर्छी नज़र से किताब की ओर देख कर कहा। फिर क्षण भर रुक कर बोलीं—"क्या यह अन्याय और नियम-विरुद्ध नहीं है ?"

अन्याय क्या है, यह न समझ पाने पर भी अरुणा ने दस बजे के बाद अपने जागने को ही अपराध समझ लिया। उसने कहा—"मुझे अफ़सोस है, मिसेज मलहोत्रा ! लेकिन आप ही बताइए नींद न आये, तो क्या किया जाय ?"

"कम से-कम जा कर लेट तो सकती थीं !"

अरुणा ने कहा—"मुझे अफ़सोस है ! इसका ख़याल नहीं आया।"

मिसेज मलहोत्रा ने आँख उठा कर, अरुणा की ओर देखा। इसका 'अफ़सोस करना' तो सारे कॉलिज में मशहूर हो उठा है। लापरवाही के साथ बहुत से नियमों और क़ायदों का उल्लं-

घन कर के,वह हर दफ़ा अफ़सोस ज़ाहिर करती है। इसके आने के पहले मिसेज़ मलहोत्रा के स्कूल में नियमों के प्रति निष्ठा का अभाव और किसी भी छात्री में नहीं देखा गया था। मिसेज़ मलहोत्रा ने बहुत सी छात्राओं को धनियों की स्त्री और बहू तैयार किया है, पर कभी उन्हें यह उलाहना सुनने को नहीं मिला, कि उनकी किसी छात्रा ने कभी अपने कर्त्तव्य में कोई कसर रक्खी हो। साड़ी के साथ जूतों का मैच करने के क़ायदे में, मोटर की पसंद में, चाय-पार्टी या डिनर-पार्टी के अतिथि सत्कार में, ड्राइंग रूम की गपशप और हँसी-दिल्लगी में, स्वामी और पुरुष जाति को आदेश देने की निपुणता में, हाव-भाव की चातुरी में उन छात्राओं ने जो निपुणता दिखलाई है, जिस योग्यता का परिचय दिया है, वह बहुत ही गौरवजनक है। इन सब बातों के साथ जब भारतीय दर्शनशास्त्र की अलोचना, ग्रीक नाट्य-कला के साथ भारतीय नाट्य-कला की तुलना और योरप के संगीत के साथ भारतीय संगीत के भेद आदि प्रसंग उठा कर छात्राओं ने अपने स्वामियों और उनके मित्रों को आश्चर्य-चकित कर दिया, तब मिसेज़ मलहोत्रा की योग्यता के सम्बन्ध में किसी को कोई सन्देह नहीं रहा। वास्तव में हलाल करने के लिए भेड़ को जैसे खूब खिला-पिला कर मोटा बनाया जाता है, वैसे ही वह भी लड़कियों को बड़े घर की बहू बनने के लिए तैयार करती आई हैं। किन्तु यह बंगाली लड़की विद्रोह का झंडा उठा कर, उनके सामने खड़ी हुई है। सभी व्यवस्थाओं के बारे में यह प्रश्न करेगी, सभी अनुशा-

सनों के बारे में यह विचार करना चाहेगी। प्रकट रूप से क़ायदे-क़ानून के विरुद्ध आचरण न करने पर भी, वह एक कठोर समालोचक की दृष्टि से सब बातों पर ग़ौर करती है, सब बातों पर विचार करती है। और उनकी नज़र में इन सब क़ायदों का कुछ अधिक मूल्य नहीं है, यह आसानी से समझ में आ जाता है। इस लिये मिसेज़ मलहोत्रा मन-ही-मन अरुणा से जैसे असन्तुष्ट हैं, वैसे ही कुछ-कुछ डरती भी हैं।

मिसेज़ मलहोत्रा ने कौच पर बैठते हुए, अपनी आवाज़ को पहले की अपेक्षा कुछ मुलायम कर के कहा—"हाँ, ख़ूब याद आया। अरुणा, तुमने उस बैले (अभिनय) के बारे में क्या ठीक किया? मेरे ख़याल में तुम्हें इस बार में फिर सोच देखना चाहिये। तुम अगर उसे करने को राज़ी हो. तो रेवरेंड चौधरी बड़े प्रसन्न होंगे। कई दिनों तक उन्होंने इस आइडिया पर ख़ूब परिश्रम करके सोचा-विचारा है। मुझे भी जान पड़ता है, कि पूर्व और पश्चिम की भाव-धारा का यह मेल बहुत सुन्दर और अद्भुत होगा। और अभिनय बहुत से दर्शकों को भी बुलाने में समर्थ होगा। 'आफ्टर आल, हम लोग 'वार-चैरिटी' के लिए ही इस अभिनय की व्यवस्था कर रहे हैं। टिकिट अधिक-से-अधिक बिकें, इसकी हमें कोशिश करनी ही होगी।"

अरुणा ने कहा—'पैराडाइस लास्ट' का दृश्य भारतीय नृत्य के साथ नहीं चलेगा, मिसेज़ मलहोत्रा।"

मिसेज़ मलहोत्रा ने कुछ उत्तेजित हो कर कहा—"चलेगा,

क्यों नहीं ? क्यों नहीं चलेगा, यही मैं जानना चाहती हूँ। क्या अब मुझे यह नये सिरे से सीखना होगा, कि प्राच्य और पाश्चात्य भाव-धारा के मिलन से कैसे उदात्त रस की सृष्टि होती है ? मेरी यह सारी संस्था ही क्या इसी नींव पर खड़ी नहीं की गई है ?"

खाने के टेबिल पर चीनी मिट्टी की प्लेटों के बदले जयपुरी काम की पीतल की रिकाबियों की बात अरुणा को याद आई। विलायती खाना देशी बर्तन में खाना ही जिससे मलहोत्रा के पूर्व और पश्चिम के, मिलन का आदर्श है। उसने गम्भीर भाव धारण करके कहा—"इस का भार और किसी लड़की को देना अच्छा होगा, मिसेज मलहोत्रा। मुझे तो नहीं जान पड़ता, कि मैं दोनों आदर्शों का ऐसा समन्वय कर सकूंगी।"

मिसेज मलहोत्रा ने कहा—"ओह, तो तुमने इसे न करने का ही निश्चय कर लिया है ? तो क्या मैं यह समझूँ कि युद्ध की चेष्टा में सहायता करने का तुम्हें कोई विशेष आग्रह नहीं है ?"

अरुणा ने कहा—"मेरी बात से क्या इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है, मैडम ?"

सहसा मिसेज मलहोत्रा ने फिर अरुणा की गोद में रक्खी हुई पुस्तक पर दृष्टि डाली। " 'रशिया विदाउट इल्यूज़ंस'! रशिया! कम्यूनिज्म! गॉड! यह किताब तुम पढ़ती हो! यह किताब तुम ने कहाँ पाई ?" उत्तेजित हो, मिसेज मलहोत्रा एक साथ इतनी बातें कह गईं।"

अरुणा ने कहा—"कल ख़रीद कर लाई थी।"

मिसेज़ मलहोत्रा ने कहा—"गुड ग्रेशस! बोल्शेविज़्म की किताब पढ़ती हो? जानती हो, यह भयंकर आइडिया (विचार) दिमाग़ में घुसने से क्या नतीजा हो सकता है? ईश्वर और धर्म के विरुद्ध, समाज और सुश्रृंखला के विरुद्ध ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसका प्रचार कम्यूनिज़्म ने न किया हो। तुम्हारे पिता जी को अगर यह बात मालूम हो गई, तो वे सन्नाटे में आ जायेंगे।

अरुणा ज़ोर से होंठ-से-होंठ दबाये, क्षण भर चुप रही। उस के बाद सहज भाव धारण कर के बोली—"मुझे अफ़सोस है, मिसेज़ मलहोत्रा! मैं अपने अपराध का भारीपन नहीं जान सकी थी। मुझे इसके लिये अफ़सोस है!"

"अच्छा, अच्छा, 'दैट्स ए नाइस गर्ल' " कह कर मिसेज़ मलहोत्रा मुसकरा दीं। फिर बोलीं—"अब तुम सो रहो। रात को जागना स्त्रियों के स्वास्थ्य और काम्पलेक्शन (सौन्दर्य) दोनों को हानि पहुंचाता है।"

मिसेज़ मलहोत्रा उपदेश देकर, चली गईं। अरुणा दरवाज़ा ज़ोर से बन्द कर के, आ कर, ड्रेसिंग-टेबिल के सामने कुर्सी पर धम-से बैठ गई। होंठ उठा कर बोली—"सच तो है, इतना बड़ा अपराध! सोचना सीखना चाहती हो, विचारना सीखना चाहती हो, दुनिया के हाल-चाल जानना चाहती हो! तुम्हें तो किसी बड़े आदमी के घर का असबाब होना होगा। तुम लोगों को यह सब शौक़ करने की क्या ज़रूरत है।

: ५ :

तीसरे पहर लगभग चार बजे उमा अरोड़ा अरुणा के कमरे में आ उपस्थित हुई। उसके पीछे उसके घर का अर्दली था जो बहुत-सी किताबों का एक बड़ा-सा पैकेट लिये हुए था। एक बजे के बाद क्लास नहीं था, इस लिए उमा अपने घर चली गई थी। वह अपनी सहेली को ये किताबें उपहार में देने को लाई है। आज अरुणा का जन्म दिन है न।

"वर्ष-गाँठ बहुत-बहुत सुखदायक हो!" कह कर, हंस कर, उमा ने अर्दली के हाथ से पैकेट लेकर, खोल कर सब किताबें अरुणा की गोद में रख दीं। फिर कहा—"यह बर्नार्ड शॉ के ग्रंथों का पूरा सेट है। तेरे लिए इससे अच्छे किसी उपहार की मैं कल्पना नहीं कर सकी।"

"अरे बाबा, मैं तो बोझ से दबी जा रही हूँ!" कह कर हँस कर, गोद से उठा कर टेबिल के ऊपर किताबें रखने के बाद, अरुणा "सखी" कह कर, उमा से लिपट गई। फिर बोली—"तो तूने मेरी प्रकृति पहचान ली। देखूँ, शॉ के व्यंग्य का भी मैं व्यंग्य कर सकती हूँ कि नहीं। लेकिन तू ने इतने रुपये क्यों खर्च

कर दिये ? शॉ की ग्रंथावली (सस्ता संस्करण) भी तो दी जा सकती थी ।"

उमा ने कहा—' भारी खर्च हो गया ? तुझे तो अपना सब-कुछ दे देने को जी चाहता है, सखी !"

अरुणा ने मुस्काते हुए, कहा—"ना, भाई, इतना न देना। यह बहुतों को नागवार हो सकता है, जिन्हें तेरे कारण रात को नींद नहीं आती, जो तरह-तरह के बहाने करके रोज-रोज तेरे माता-पिता से मिलने के लिए उपस्थित होते हैं !"

उमा ने बनावटी गम्भीरता के साथ कहा—"तुझे देखने के बाद वे क्या मेरी ओर आँख उठा कर भी देख सकते हैं ? कल हमारे घर में रात की दावत थी। बातों के सिलसिले में तेरी चर्चा छिड़ गई। अनायास मेरे मुंह से तेरे जन्म-दिन की बात निकल गई। बस, फिर क्या कहना था, कई टाई और कालर वाली गर्दनें एक-साथ सारस की गर्दन की तरह लम्बी हो उठीं। जैसे इतनी दिलचस्प ख़बर साधारणतः सुनने में नहीं आती। मैंने तो सोचा, कि वे सब कहीं तुझे उपहार भी न भेजें।"

अरुणा ने कहा—"कैसे कहूँ, कि किसी ने नहीं भेजा..."

उमा ने कहा—"भेजा है सचमुच ? इतनी बोल्डनेस (साहस) ! किसने भेजा है, बहन ?"

अरुणा ने कहा—"क्यों, क्या जेलेसी (ईर्ष्या) अनुभव होती है ?"

उमा ने कहा—"हाँ, अनुभव तो होती है।"

अरुणा ने कहा—"एक साहब ने, मेरे प्रदेश के रहने और बन्धु होने के अधिकार से, मरक्को चमड़े की जिल्द वाली रवीन्द्र-रचनावली के चारों खण्ड भेजे थे। देख कर बड़ा लोभ हुआ था।"

उमा ने पूछा—"इसके मानी? लौटा दिया क्या?"

अरुणा ने कहा—"दुःख के साथ, धन्यवाद देकर, जिसमें, कि मिस्टर बनर्जी अपने प्रदेश की इस रहने वाली के असौजन्य से दुःखित न हों, उनके हृदय को चोट न पहुँचे। और एक साहब ने अपना नाम प्रकट न करने का आदेश देकर अर्दली के हाथों काँसे की एक सुन्दर नटराज की मूर्ती भेजी थी। उसे भी दुःख के साथ..."

उमा ने जीभ से एक विरोध का शब्द करके, कहा—"ये गुमनाम महाशय मेरे भाई साहब होंगे। कनाट प्लेस की एक क्यूरियो शॉप में कल उन्हें मैंने वह नटराज की मूर्त्ति उठाते-धरते देखा था।"

अरुणा ने गम्भीर हो कर, पुकारा—"उमा!"

उमा ने कहा—"क्या, सखी?"

अरुणा ने कहा—"नई दिल्ली से मैं घृणा करती हूँ, हृदय से घृणा करती हूँ। इसमें कोई अपनी चीज नहीं है। यहाँ कोई विशिष्ट संस्कृति स्वाभाविक भाव से तैयार नहीं हुई। इसके अस्तित्व में दूसरों के अनुकरण की प्रवृत्ति बसी हुई है। विगत युग में दिल्ली मुग़ल-महल की रीति-नीति का अन्ध अनुकरण करती आई है, और वर्त्तमान में नई दिल्ली पूर्ण रूप से 'साहब'

बन गई है। यहाँ के लोग अंग्रेजों की ही नक़ल के कपड़े पहनते हैं, उन्हीं की तरह खाना खाते और घूमते-फिरते हैं। इनका रहन-सहन, चाल-ढाल, हाव-भाव कुछ अपना नहीं, सब अंग्रेजों की नक़ल है। यहाँ तक कि अंगरेजी में ही वे लोग बातचीत भी करेंगे। नई दिल्ली का आदि से अन्त तक सब बनावटी है। बृहत्तर भारतवर्ष के साथ इसका कोई भी योग नहीं है। यह भारतीय नृत्य में मिल्टन के 'पैराडाइस लास्ट का 'बैले'—अभिनय करने की तरह है ।"

उमा अरोड़ा ही-ही करके हंस उठी। बोली—'वह अभिलाषा त्याग देने क लिए तो तूने उन्हें मजबूर कर दिया है, बहन।"

अरुणा ने वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा—"नई दिल्ली को भारतीय बनाना आसान काम नहीं। एक बार नई दिल्ली की तरफ़ अच्छी तरह ताक कर तू देख। क्या तू सोच सकती है, कि यह भारतवर्ष है ? अगर यह भारतवर्ष है, तो फिर कहाँ है दारिद्र्य, आधे पेट भोजन, फ़ाक़ा, फटे कपड़ों से लज्जा-निवारण की वेदना, राजनीतिक पराधीनता में उठने वाला गहरा विक्षोभ ? जान पड़ता है, कि विदेशियों के निकट भारत के ऐश्वर्य और भारतवासियों की आर्थिक, मानसिक और राजनीतिक तृप्ति की बात का प्रचार करने के लिए ही इसकी सृष्टि हुई थी।... अरे, सुमति आओ, आओ ! "

हंसते हुए सुमति मीरचँदानी ने प्रवेश किया। सोने के ऊपर मीने के काम का एक बड़ा-सा ब्रोच वह उपहार लाई थी।

वह ब्रोच अरुणा के हाथ में देकर, उसने कहा—"तुम सौ बरस जियो !"

उड़ती नजर से अरुणा ने देखा, बहुत ही क़ीमती उपहार है, इतना क़ीमती कि कॉलेज की एक सहपाठिनी का दूसरी सहपाठिनी को देना इसे सहज और स्वाभाविक कभी नहीं हो सकता। खास कर, सुमति के साथ उसका मेल-जोल इतना अधिक नहीं है, कि उमा की तरह उसे अरुणा को 'सब-कुछ दे' डालने की इच्छा हो सके। इस उपहार के पीछे सुमति के बड़े भाई के आग्रह की कल्पना कर के, अरुणा शंकित हो उठी। लेकिन बनर्जी या कुशल चंद अरोड़ा जो नहीं कर सके, उसमें मीरचंदानी सफल हो गया। सुमति के नाम से उपहार भेज कर वह अरुणा की अवहेलना से बच गया। अरुणा के मन में भारी खीझ का भाव उमड़ा, पर वह उसे दबा गई। हंस कर बोली—"शतायु होने के साथ चिर-यौवन होने की कामना भी क्यों नहीं की, सुमति ? मैं बूढ़ी हो कर इतने दिन जीती नहीं रह सकूंगी।"

सुमति ने हंस कर कहा—"तुम अनन्त, अक्षय यौवन वाली उर्वशी हो! आज हम लोगों को जरा अपना नाच दिखाओ न। एक दिन, न हो, सिर्फ़ हमीं लोगों के लिए नाच दो।"

उमा ने होंठों से दबी मुस्कान के साथ कहा—"एक दिन, न हो, लड़कों का दिमाग़ जरा ठीक ही रहने दो। इसमें ऐसी कौन सी क्षति होगी ?"

अरुणा ने हंस कर, कहा—"वाह, आज मैंने तुम सब को निमंत्रण दिया है। नाचूंगी क्यों नहीं? अवश्य नाचूँगी। लेकिन उससे भी बढ़ कर जो चीज मीठी है, वह भी दूंगी—बंगाली मिठाई! बंकिम बाबू की किताब में संदेश का नाम तुमने नहीं देखा? आज वह भी खा कर देखोगी।"

सुमति ने कहा—"धन्य है यह सालगिरह! नहीं तो भला अरुणा कहीं अपनी सखियों के कहने से नाचने को राजी हो सकती थी? यह भी क्या कभी सम्भव था! अच्छा, देखा जायगा, कि संदेश अधिक मीठा है या नाच।"

अरुणा ने बनावटी क्रोध दिखा कर, कहा—"सालगिरह की ऐसी-तैसी! ऐरे-गैरे, नत्थू खैरे, सभी की तो सालगिरह होती है। फिर मेरी ही सालगिरह में क्या विशेषता है? अरे भाई, कल बाबू जी का भेजा साड़ी का पार्सल आया, इसीसे तो तुम सब को मालूम हुआ, कि आज मेरा जन्म-दिन है, और मुझे भी उसका ख़याल आया। देखो तो सही, कितना हंगामा खड़ा हो गया! होस्टल की सहेलियों ने इतने ही समय में पढ़ने के 'हॉल' का बीच का हिस्सा सामान से खाली कर दिया है। वे कहती हैं, कि यह पूर्ण रूप से प्राइवेट उत्सव होना चाहिये, स्कूल के व्यवस्थापकों को भी कुछ ख़बर न होनी चाहिये। व्यवस्थापकों को वे अपने घर के आदमी मानते डरती हैं। वह देखो, मालती कैसी दौड़ती आ रही है। चलो, अब हम भी चलें।"....

स्टडी की दीवार के किनारे-किनारे पचास के लगभग लड़कियां जमा हो गई हैं। उनके पैरों के पास खा-पी कर साफ़ की हुई प्लेटें पड़ी हैं। उनमें फ़िनिशिंग स्कूल के नियमानुसार अशास्त्रीय, अखाद्य-सामग्री थोड़ी-बहुत खाने से बची हुई अब भी पड़ी है। एक तरफ़ एक शतरंजी के ऊपर कुछ लड़कियाँ सितार, इसराज, इत्यादि ले कर बैठी हैं। एक लड़की बायें तबले पर चाँटी दे रही है। एक कोने से घुंघरुओं की खंडित और अस्त-व्यस्त आवाज़ आ रही है। उमा अरोड़ा अरुणा के पैरों के पास बैठी, सहेली के पैरों में घुंघरू बाँध रही है। अब नाच शुरू होगा।

सितार और इसराज के मिले हुए स्वरों ने जोर बाँधा। तबला जोर से बजने लगा। दो-एक सैकेंड के बाद ही घुंघरुओं के घनीभूत कल-गुंजन के बीच हॉल के बीच में देवदासी के वेष में अरुणा स्वच्छन्द गति और लास्यमय मुद्रा के साथ उपस्थित हुई। एक वाक्यहीन नई भाषा में उसका अंग-अंग जैसे बोल रहा था। बाँकी भौंहें विशाल आँखों के पल्लव, बड़ी-बड़ी काली आँखें, अनावृत्त तरु-पल्लव के समान भुजायें, चंपे की कली-जैसी उंगलियाँ, चलती-फिरती लता के समान छरहरी देह, महावर से रंगे सफ़ेद कमल के समान दोनों पैर—सभी की जैसे अपनी-अपनी भाषा हो, अपना-अपना व्यक्तित्व हो, अपना-अपना सौन्दर्य हो। कौन कहता है, कि अरुणा मिसेज मलहोत्रा के फ़िनिशिंग कॉलेज में अदब-क़ायदा सीखती है,

और हर घड़ी बिना विचारे सभी को बनाती, व्यंग्य करती फिरती है ? यह उसका नया ही रूप है, वह देवदासी है। देवता के मन्दिर में देवता को अर्पण की गई उसकी तरुणी सेविका है।

नाच ही में—देवमन्दिर में आरती शुरू हुई। घण्टा बजा, मृदंग बजा, रोशनी का झाड़ जलाया गया। देवदासी जगत को भूल गई। उसकी दृष्टि में देवता साक्षात प्रकट हो उठे हैं। इस दुर्लभ मुहूर्त में सारी श्रद्धा देवता को अर्पित करनी होगी, अन्तः-करण की अनन्त आशा, देह की अंग-भंगि के भीतर से व्यक्त करके जलानी होगी, देवता ! तुम इहकाल हो, तुम परकाल हो, तुम सर्वस्व हो ! हे जीवन के स्वामी, तुमको छोड़कर आशा करने को, आकाँक्षा करने को इस दासी के लिये और कुछ नहीं है।

आरती समाप्त हुई, प्रणाम का निवेदन समाप्त हुआ। चारों ओर की भीड़ हाथ फैलाये खड़ी है। अब प्रसाद बँटेगा। देवदासी जैसे भक्ति के नशे से जाग उठी, उसने हाथ में नैवेद्य की थाली उठा ली और प्रसाद पाने की इच्छा रखने वाली व्यग्र भीड़ के बीच तेजी से आगे बढ़ गई। दाहने, बायें, सामने, पीछे कितने ही हाथ फैले हुए हैं। बच्चों के हाथ, नारियों के हाथ, युवकों के हाथ, बूढ़ों के हाथ। प्रसाद के लिए कितनी छीना-झपटी हो रही है।

देवदासी सहसा रुक गई, एक छोटे-से बच्चे ने देवदासी के आगे प्रसाद के लिए हाथ बढ़ा दिया है। उसका भाव यह है—

"अजी, जरा-सा देवता का प्रसाद मुझे भी दो न ! दया करके जरा-सा दो, भैया !"

शून्य नैवेद्य की थाली की ओर देखकर, देवदासी भौंचक्की-सी होकर खड़ी रह गई। थाली में प्रसाद का तो एक कण भी नहीं रहा, सब चुक गया। यह कैसी लज्जा है, कैसी दीनता है ! बालगोपाल खड़ा हुआ यशोदा से कहता है—'माँ, जरा-सा माखन दे !' अप्रतिभ यशोदा इसका क्या उत्तर दे ? फिर वही प्रार्थना—'अजी, दो ! दो न जरा-सा, सिर्फ थोड़ा-सा देवता का प्रसाद !' देवदासी ने नैवेद्य का थाल हाथ से फेंक दिया। दोनों व्यग्र, उत्सुक हाथ आगे बढ़ा कर बालक के पास दौड़ी गई। प्रसाद-याचक बच्चे को जल्दी से उठा कर छाती से लगा लिया और उसके कोमल मुख को चूमती हुई, कहने लगी—"अपने हृदय का सारा अमृत तेरे ही लिए तो जमा कर रक्खा है ! ..... ओ रे मुनुआ, ओ रे बच्चे, ओ रे जादूगर, ओ रे मेरे लाल, ओ रे मेरे स्वप्नलोक के शिशु भोलानाथ !"

कोमल, करुण सुर में इसराज और सितार बजने लगा। नृत्य के ताल के साथ तबले की आवाज एकदम समा गई है। विलम्बित ठाठ में घुँघरू बज रहे हैं। चारों ओर तरुणियों की, प्रसाद माँगने वालियों की भीड़ लगी हुई है।

'ओ रे मुनुआ, ओ रे मेरे स्वप्न लोक के शिशु भोलानाथ !' यही एक बात देवदासी की देह की भाषा आकुल स्वर से बार-बार कह रही है।

: ६ :

योरुप में युद्ध और नई दिल्ली में 'सीजन' चल रहा है। चाय, डिनर, काकटेल पार्टी होती ही रहती हैं। बड़े लाट की गार्डेन-पार्टी के लिए सूट बनवाये जा रहे हैं। विलायती होटल और रेस्तराओं आदि में अनेक नाच के उत्सव नित्य हो रहे हैं। उनमें फ़ौजी और ग़ैरफ़ौजी पोशाक पहने हुए लोगों की इतनी भीड़ होती है, कि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता कि सभी लोग युद्ध से पैदा हुई दुश्चिन्ता को भूलने के लिए जी-जान से कोशिश कर रहे हैं। युद्ध के विषय में सोचने और उद्योग करने के लिए सरकार ने जिन लोगों को नियुक्त किया है, उनकी बात छोड़ देने पर भी, नई दिल्ली के बहुत-से ग़ैरफ़ौजी कर्मचारी भी युद्ध के सम्बन्ध में कम घबराये हुए नहीं हैं। विभिन्न विभागों के विस्तार के कारण जिन सब कर्मचारियों को केवल युद्ध-काल के लिए लम्बी तनख्वाह के पदों पर नियुक्त किया गया है, वे युद्ध की गति को आशंकापूर्ण दृष्टि से बराबर देखते रहते हैं। वे डरते हुए मन-ही-मन कहते हैं—'हाय रे! जान पड़ता है अब युद्ध बन्द हुआ, अब बन्द हुआ।'

दिलीपचन्द् अरोड़ा ने एक पिकनिक का आयोजन किया है। बहुत दिनों से छोकरे उनके पीछे पड़े हैं कि शहर के बाहर कहीं चल कर काफ़ी देर तक हो-हल्ला और आनन्द मनाया जाय। छोकरे अफ़सरों की बहुत-सी जिदें अरोड़ा साहब को पूरी करनी पड़ती हैं। उनका कहा मानना पड़ता है, इस बार भी वही हुआ। कहाँ पिकनिक के लिए चला जाय, इस पर मि० बनर्जी, सिन्हा, कुशलचन्द् अरोड़ा, मीरचन्दानी, सक्सेना आदि में बहुत बहस-मुबाहसा और विचार-विनिमय हो चुका है। पुराना क़िला, हुमायूँ की क़ब्र, ओखला बाँध, फ़ीरोजशाह का कोटला आदि सभी जगहों पर विचार करके अन्त में कुतुब मीनार को पसन्द किया गया। कुतुब मीनार के चारों ओर के लान बहुत ही सुन्दर हैं और यहाँ-वहाँ भग्नस्तूप, ऐतिहासिक युग की छाप लगे हुए टूटे कोठे और सीढ़ियाँ, धँस गए हुए अलिन्द और स्तम्भ तथा आस-पास के झाड़-झंखाड़ और आड़ के स्थान पिकनिक के लिए उस जगह को विशेष उपयुक्त बनाये हुए हैं। पिकनिक के शौक़ीनों के लिए वह स्थान एक विशेष आकर्षण रखता है। सब से बड़ी विशेषता यह है कि कुतुब के ही पास डाक-बँगला ठहरने और आराम करने के लिए विशेष सुविधाजनक है।

औरत-मर्द मिला कर लगभग पचीस आदमियों को पिकनिक का निमन्त्रण दिया गया है। मिसेज अरोड़ा ने तीन दिन तक बराबर बाज़ार में घूम कर सौदा-सुलफ़ किया। उस दिन खान-सामाँ, बावर्ची और अन्य कई एक नौकर-चाकरों को सवेरे ही

कुतुब भेज दिया गया है। तय हुआ कि लोग सवेरे साढ़े दस बजे वहाँ पहुँच जायेंगे। इसके बाद वहीं लञ्च और तीसरे पहर चाय का प्रबन्ध होगा। उसके बाद चन्द्रमा के निकलने पर दो घण्टे तक इधर-उधर घूम-फिर कर हो-हल्ला मचा कर, आमोद-प्रमोद करके सब लोग नई दिल्ली लौट आवेंगे।

फीरोजशाह रोड पर कुशालचन्द अरोड़ा अपनी रेसिंग कार तेजी से लिये जा रहा है। सफेद सिल्क का क़ीमती सूट पहने है। हाथों में 'ड्राइविंग ग्लव्स' (मोटर चलाते समय पहनने के दस्ताने) हैं। उत्सव के साथ फबने वाली टाई खूब क़ायदे के साथ बाँध रक्खी है।

बग़ल में उसकी बहन उमा बैठी है, वह सिल्क की शलवार और क़मीज़ पहने है। रंगीन दुपट्टा हवा में उड़ रहा है। गले में अनेक प्रकार के क़ीमती रत्नों की माला है। आँखों में रंगीन चश्मा है।

उमा ने कहा—"भैया, तुम बड़े ज़ोर से मोटर चला रहे हो, मोड़ पर मुड़ते वक्त गाड़ी उलट जायगी।"

कुशालचन्द ने कहा—"ऊँहूँ, कुछ डर नहीं है।

उमा ने कहा—"इतनी जल्दी काहे की है? वह तो आज दिन भर हम लोगों के साथ-ही रहेगी। उसे पिकअप करने में दो-चार मिनट की ही देर तो लगेगी।" उमा की आँखों में शरारत की हँसी थी।

"नाटी गर्ल (शरीर लड़की)।" कह कर, कुशालचन्द ने गाड़ी की स्पीड कुछ कम कर दी।

अरुणा भी इन लोगों के साथ ही पिकनिक में जा रही है। निमन्त्रण देना और चलने के लिए राज़ी करना, ये दोनों काम अवश्य मिस अरोड़ा (उमा) को करने पड़े हैं किन्तु उमा करती न, तो क्या करती ? पिकनिक के उद्योगी युवक अफ़सरों ने एक स्वर से यह राय जाहिर की थी, कि अगर मिस राय चौधरी को साथ न ले जाया जा सका तो उसमें उतना मज़ा न आयेगा। यहाँ तक कि इसे वे अपना अपमान भी मान सकते हैं। मिसेज़ अरोड़ा अपनी लड़की की इस बँगालिन सखी से सचमुच बड़ा स्नेह करती थीं। उन्होंने भी लड़कों के इस आग्रह का विश्लेषण अथवा उसके वास्तविक कारण का निर्णय करना नहीं चाहा। उमा की और सखियाँ आ रही हैं, अतएव अरुणा भी अगर आ सके, तो उसे आनन्द ही होगा, यह सोच कर, उन्होंने मिसेज़ मलहोत्रा को टेलिफ़ोन कर अरुणा की छुट्टी की व्यवस्था करली।

लेकिन अरुणा इस निमंत्रण को पा कर, पहले तो बहुत ही असमंजस में पड़ गई। अगर वह उसे नामंजूर करती है, तो मिसेज़ अरोड़ा को सदमा पहुँचेगा, और वे बुरा भी मानेंगी, इस में कोई सन्देह नहीं है। किन्तु जब उसने उमा के मुँह से निमंत्रित व्यक्तियों से नाम सुने, तब उसे बहुत डर मालूम हुआ। वही बनावटी बातें, उस से बातें करने के लिए वही-सब का आशोभन आग्रह, वही निहाल होजाने का भाव प्रकट करने वाली हँसी। उसके मन में खीझ और शंका भर गई। उसने उन में से कई युवकों की आँखों में ऐसा गद्‌गद्‌ भाव भी देखा है कि

सम्भव है कि उनमें से कोई समझदारी और शिष्टता से हाथ धोकर पागल की तरह एकाएक उससे प्रेम-निवेदन कर बैठे, तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। कुछ दिनों से सचमुच ही नई दिल्ली के इस श्रेणी के युवक-समाज का यह गद्गद् भाव अरुणा के लिए आशंका का कारण हो उठा है।

किन्तु इस आशंका ने ही अन्त में उसे जाने के लिए राजी कर दिया, नहीं तो कहा नहीं जा सकता कि उमा के अनुरोध से भी वह पसीजती या नहीं। अरुणा ने अपने मन में सोचा, कि कुछ लोभी, क्षुद्र आदर्श और उद्देश्य रखने वाले युवकों के डर से वह अपने इष्ट-मित्रों के उत्सव में शामिल होने में हिचके, तो यह उसकी अपनी शक्ति और व्यक्तित्व के लिए सम्मानजनक न होगा। इस ढंग के स्वल्प बुद्धि वाले, रूप-लोलुप और औरतों के शिकारी युवकों के तीर मिसेज मलहोत्रा के कॉलेज में पालिश पाई हुई बहुत-सी लड़कियों के ऊपर विशेष रूप से कारगर होने पर भी अरुणा उनकी दौड़ को जानती है, वह उन लड़कों को इतना अशक्त और हँसी का पात्र समझती है कि उनसे उसे कोई भय नहीं है। इनके ही भय से छिपी रहकर वह इन्हें सम्मान क्यों दे? व्यंग्य का चाबुक इनकी पीठ पर और भी थोड़ा चलाने में क्या हानि है?

उमा सखी को गाड़ी पर लेने के लिए जा रही है। उसने पहले अपने भाई से यह वादा करा लिया है, कि वह उसके पंजाबी पहनावे पर कोई व्यंग्य या आवाजकशी नहीं करेगा। यह वादा

कहा कर ही वह अपने भाई की गाड़ी का इस्तेमाल करने पर राजी हुई है।

कुशलचन्द ने कहा—"उमा।"

उमा ने कहा—"क्या?"

"उस बात के बारे में जरा आज पता लगा लेना।"

"कौन-सी बात, भैया?"

कुशलचन्द ने मामूली हिचक के बाद कहा—"यही कि ब्याह के मामले में, तेरी सहेली के मन में, कोई प्रादेशिक संकीर्णता है या नहीं।"

उमा ने आश्चर्य से आँखों की पलकें ऊपर उठा कर कहा—"तुम कुछ पागल तो नहीं हो गये हो, भैया?"

कुशलचन्द ने कहा—"जान पड़ता है, कि हो गया हूँ, उमा।"

उमा ने कहा—"बैड! वेरी बैड!! विदेशियों के ऊपर तुम्हारा बड़ा लोभ है, भैया। यह तुम्हारी बहुत बड़ी वीकनेस है। क्यों, पंजाबी लड़कियों ने ऐसा क्या अपराध किया है?"

"फार हेवेन्स सेक! शलवार पहनने वाली लड़की से मैं कभी ब्याह नहीं कर सकूँगा।...आई एम सॉरी! किसी के ऊपर कटाक्ष करना मेरा मतलब न था। लेकिन सचमुच उमा, आज अगर मैं तेरी सहेली से प्रस्ताव करूँ तो..."

उमा ने कुशलचन्द की ओर घूम कर, देखकर असन्तुष्ट स्वर में कहा—"यह तुम न करना, कभी न करना! आई फार्बिड यू! (मैं तुम्हें मना करती हूँ)।"

"क्यों उमा, क्या मैं इतना अयोग्य हूँ ? सचमुच ही क्या इतना अयोग्य हूँ कि..."

"यह बात नहीं है।"

"तो फिर ?"

"इसलिए कि वह तनिक भी दुविधा न करके तुमको रिफ्यूज कर देगी। लुक शार्प ! कोलीजन कर दोगे क्या ? खूब हो तुम।"

कुशल ने ब्रेक लगा कर, गाड़ी को रोक लिया। विपत्ति टल गई।

उमा ने कहा—"सुनते हो, भैया ?"

कुशल ने कहा—"अब और किस उपदेश की वर्षा होगी ?"

उमा ने कहा—"प्रामिस (वादा) करो, आज 'यू मस्ट बिहेव' (तुम बहुत ही संयत रहोगे)।"

कुशल ने कहा—"जा-जा ! सभी बातों में गुरुआई करने लगती है। जैसे मैं बिहेव नहीं करता।"

उमा ने कहा—"कुछ भी हो, तुम प्रामिस करो।"

कुशल ने कहा—"और अगर न करूँ, तो ?"

उमा ने कहा—"तो वह हमारे साथ इस गाड़ी में नहीं जायगी।"

"नाटी गर्ल!" गियर बदल कर, कुशलचन्द ने कहा—"क्या प्रामिस करना होगा ? बताओ।"

: ७ :

सुमति ने कहा—"ना, भाई, मुझ से अब ऊपर चढ़ा नहीं जाता। मैं यहीं खड़ी हो जाऊँगी।"

उमा ने सुमति का हाथ पकड़कर, खींचते हुए कहा—"खड़ी क्यों हो जायगी, रे? और थोड़ी-सी सीढ़ियाँ ही तो रह गई हैं। लोग तो एवरेस्ट (गौरी शंकर नाम की हिमालय की सब से ऊँची चोटी) पर चढ़ने के लिए दूर-दूर के देशों से दौड़े आते हैं, और तू कुतुब मीनार के ऊपरी खण्ड तक भी नहीं चढ़ सकेगी?"

सुमति ने कहा—"मैं नहीं चढ़ना चाहती। मुझे हाँफी आ गई।"

उमा ने कहा—"कमजोर लड़की कहीं की! सब लड़कियाँ चढ़ गईं और तू पड़ी रह गई। सक्सेना, श्रीवास्तव, बनर्जी इनमें से किसी से इस जगह मिलने का वादा तो नहीं कर लिया है?" उमा की आँखों में शरारत की हँसी झलक रही थी।

सुमति ने कहा—"धुत, दुष्ट कहीं की! जान पड़ता है, तेरे मन में यही सब बातें रहती हैं। चल और कै सीढ़ियाँ चढ़ना है?

मुझे चक्कर आ जायगा, तो उसकी ज़िम्मेदारी तेरे ही ऊपर होगी।"

उमा ने शरारत करके कहा—"मेरी बला ज़िम्मेदारी ले! सब ज़िम्मेदारी अरुणा की है। उसी ने तो कुतुब की चोटी पर चढ़ने की सलाह दी है। नहीं तो हमें बस कुतुब के पैरों के पास बैठ कर कैमरे से स्नैपशाट लेने ही का अभ्यास है। ख़ैर, जाने दो, चलो। देर होगी तो ऊपर की बदज़ात लड़कियाँ हमारी हँसी उड़ायेंगी।...देख, यहाँ सीढ़ी घूम गई है। दीवार पकड़ ले।"

इतनी अन्धेरी सीढियाँ चढ़कर कुतुब मीनार की चोटी पर पहुँचना मामूली परिश्रम का काम नहीं है। बाहर से जो लोग कुतुब को देखने आते हैं या जिनका कलेजा कमज़ोर नहीं है, ऐसे प्रायः सभी लोग कुतुब मीनार की चोटी पर चढ़ने की चेष्टा करते हैं। किन्तु दिल्ली के शौक़ीन वर्ग के लोग, जो इच्छा होते ही मोटर पर बैठ कर कुतुब मीनार तक का चक्कर लगा सकते हैं। उनमें से किसी ने कभी ऐसी मूर्खता की हो, यह नहीं सुना गया। लेकिन कुतुब की ऊँचाई देखते ही अरुणा को उस की चोटी पर चढ़ने का शौक़ पैदा हो गया। उसने कहा—"मैं ऐसी अकृतज्ञ नहीं हूँ कि अपनी जाति के आदि-पूर्वजों (डार्विन के मतानुसार बानरों) के रक्त का ऋण अस्वीकार करूँ।"

सखियों से प्रश्न करने पर मालूम हुआ कि उनमें से हर-एक असंख्य बार कुतुब मीनार तक आई हैं, लेकिन कुतुब की चोटी तक चढ़ने का सौभाग्य किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ। बस, तय हो

गया ऊपर चढ़ना। चढ़ो अब बादशाही जमाने की अन्धकार-पूर्ण सीढ़ियों पर और हाँफते-हाँफते पाँचवीं मंज़िल पर पदार्पण करो।

उमा ने पुकारा—"सहेली।"

अरुणा ने बहुत दूर ताकते हुए कहा—"नई दिल्ली कहाँ पर है, कुछ अन्दाज़ कर पा रही है?"

उमा ने कहा—"वह जो कुछ छोटे-छोटे टीले-से देख पड़ते हैं, वही तो है शायद।"

मालती सक्सेना ने कहा—"वे सेक्रेटरियट भवन के गोल-गोल गुम्बज हैं।"

अरुणा ने उसी तरह दूर ताकते हुए कहा—"लाट साहब का दफ़्तर यहाँ से ठीक अपने उपयुक्त मर्यादा पा रहा है।"

उमा ने कौतूहल के साथ सहेली के मुँह की ओर देखते हुए कहा—"मर्यादा?"

अरुणा ने कहा—"सुनती हूँ, किरानियों के बैठने के लिए इतना बड़ा हॉल देखकर बापू (गाँधीजी) को बड़ा विस्मय हुआ था। विस्मय होने की बात ही है। मगर यहाँ से अगर गाँधीजी उसे देखते, तो फिर उन्हें इसके लिए अफ़सोस न रहता।"

थकी हुई सुमति मीरचन्दानी ने शिकायत के लहजे में कहा—"गाँधी जी महाराज! वे कभी इस पर चढ़ने की दुश्चेष्टा न करते।"

उमा ने हँसकर कहा—"मैं अगर हाथ पकड़ कर खींच लाती

तो निश्चय ही वे चढ़ आते।...अच्छा भाई, ओखला का बाँध किस तरफ़ होगा? कोई कहता था कि यहाँ से ओखला का पानी दिखाई देता है।"

मालती ने कहा—"अजी, ओखला की कौन कहे, चेष्टा करने से यमुना भी यहाँ से दिखाई देगी।"

उमा ने शरारत की हँसी हँसते हुए प्रश्न किया—"तो क्या भाई, यहाँ से श्याम की बंशी भी सुनाई देगी?"

मालती ने कहा—"कान अगर हों, तो सुनाई क्यों न देगी, भाई? चेष्टा करने से कहीं पास ही तू सुन पायेगी।"

उमा ने कहा—"लेकिन हमारी राधा तो कुछ बोलती ही नहीं!" यह उसने अरुणा को लक्ष्य करके कहा।

अरुणा ने मुँह घुमाकर दबी हुई हँसी हँसते हुए कहा—"आज-कल की राधायें बंशी का अर्थ कल की बंशी (मिल का भोंपू) ही समझती हैं।"

"अब क्या कहती हो भाई?" उमा ने शरारत-भरी आवाज़ में मालती से प्रश्न किया।

अरुणा ने उमा की चोटी पकड़कर एक झटका देकर कहा—"मैं तो कल का अर्थ दमकल ही समझती हूँ। हृदय में जब आग लगी होती है तब जिससे आग बुझाई जाती है वह कल।..."

कुतुब की ऊँची चोटी पर से पृथ्वी, राष्ट्र, समाज और जीवन के सम्बन्ध में तरह-तरह के मन्तव्य प्रकट करके सब सखियाँ जब नीचे उतर आईं, तब सभी थक कर क्लान्त हो गई थीं। डाक-

बँगले के बरामदे में आकर एक इज़ीचेयर पर दख़ल जमा कर सुमति मीरचन्दनी ने कहा—"अब मैं दिन भर यहाँ से नहीं हिलूँगी।"

उमा ने कहा-"मैं कम-से-कम एक घंटे तक तेरा साथ दूँगी।"

मालती ने मुँह से कुछ नहीं कहा, लेकिन इज़ी-चेयर के अभाव में सामने और एक कुर्सी खींच ला कर उस पर दोनों पैर रखकर दूसरी कुर्सी पर विश्राम करने लगी।

बरामदे के उस ओर अतिथियों में से कई आदमी हँसते हुए गुलगपाड़ा कर रहे थे। कुछ लोग कुतुब मीनार के चारों ओर घूमने चले गये थे और कुछ पास के मेहरौली नाम के गाँव की सैर करने निकल गये थे। मिसेज़ अरोड़ा बावर्चियों और खान-सामाओं के साथ उलझी हुई थीं। अरुणा डाक-बँगले के भीतर गई थी। वहाँ से एक किताब हाथ में लेकर बरामदे में लौट आई। बोली—"मैं विश्राम की और व्यवस्था करूँगी। पिकनिक में आई हूँ, कुर्सी पर बैठ कर समय क्यों बर्बाद करूँ? अगर कुर्सी पर ही बैठना है तो फिर मिसेज़ मलहोत्रा के स्कूल के पढ़ने के हॉल या अपनी कोठरी ने क्या क़सूर किया था? बादशाही ज़माने की आब-हवा जहाँ लगी हो, ऐसी कोई निराली, एकान्त, गुप्त जगह क्या यहाँ खोज निकाली नहीं जा सकती? सुनती है, उमा? तेरी जब आँखें खोल कर देखने के लायक़ अवस्था हो, तब तू ऐसी ही कोई जगह खोज निकालने की कोशिश करना। तब तक मैं अकेले ही पठान-युग का उपयोग कर आऊँ।"

उमा ने आँखें खोल कर कहा—"लेकिन सहेली यहाँ बादशाही जमाने के भूत बहुत मिल जाते हैं, उनका उपद्रव बहुत है।"

"नई दिल्ली के कनाट प्लेस में क्या यहाँ से कुछ कम भूत हैं ?" कह कर, हँस कर, विदाई-सूचक हाथों की मुद्रा कर के, अरुणा डाक-बँगले के बाहर हो गई।

उमा ने चिल्ला कर कहा—"वहाँ से 'कू' करना। देखूँ, तुम को ढूँढ निकाल सकती हूँ कि नहीं।"

सुमति ने कहा—"मैं तो यहाँ से एक पग भी नहीं हिलूँगी! लुका-छिपी खेलने-लायक़ एनर्जी (शक्ति) मुझमें बाक़ी नहीं है।"

"तूने सिन्धी आमिलों का नाम डुबो दिया—"कह कर मालती सक्सेना ने फिर आँखें बन्द कर लीं। "

आधे घण्टे के बाद भी जब उमा नहीं दिखाई दी, तब अरुणा ने समझ लिया कि उसने जो जगह खोज निकाली है। वह सचमुच एक दुर्गम स्थान है। तीन टूटी हुई सीढ़ियों से नीचे उतर कर किष्किन्धा के कौशल (उछल-फाँद) का सहारा लेना पड़ता है। मगर हाँ, वह छलाँग मामूली-सी होती है। इसके फल-स्वरूप जो कामोफ्लेज्ड जगह और बैठने के लायक़ लाल पत्थर की छोटी-सी वेदी पाई गई है। वैसी जगह और वेदी मुग़ल-युग के पहले के रहस्य की छाप लगे हुए कुतुब के हाते के भीतर और कहीं मिलना बहुत कठिन है।

बहुत देर तक पढ़ते रहने के बाद अरुणा ने किताब बन्द कर ली। बादशाही ज़माने के इतने बड़े स्मारक-स्तम्भ के पास बैठ

कर छापे के अक्षरों पर आँखें दौड़ाना असंगत जान पड़ता है। घटनाओं से भरे और दूरवर्ती होने के कारण जगमगाते हुए बादशाही जमाने की ओर मन दौड़ जाता है, उस युग के आडंबर, ऐश्वर्य, घुँघरुओं की गूँज और तलवारों की झनकार मन में भर जाती है।

एकाएक सुनाई पड़ा—"गुड ग्रेशस आप यहाँ! ऐतिहासिक युग की कोई शहज़ादी तो नहीं हैं आप?"

अरुणा ने चौंक कर आँखें खोल दीं। देखा, सामने कुछ दूर पर मि० सिन्हा खड़े हैं और दाढ़ी-मूँछों के भीतर से हँसी फूटी पड़ रही है।

"मैं यहाँ बैठी ज़रा पढ़ रही हूँ" कहकर अरुणा कुछ शंकित हो उठी।

मि० सिन्हा ने कहा—"मैंने आपको जिस हालत में देखा, वह तो आँखें मूँद कर किसी का ध्यान करने की अवस्था थी। मैं ईर्ष्या के साथ सोच रहा था, कि आप किस भाग्यशाली का ध्यान कर रही हैं!...क्या मैं यहाँ ज़रा बैठ सकता हूँ?"

अरुणा ने गम्भीर होकर कहा—"मैं अब उठना चाहती हूँ।"

सिन्हा ने कहा—"मैं ऐसा नराधम नहीं हूँ, कि ऐसी एकान्त सुन्दर जगह में बैठने के आनन्द से आपको वञ्चित करूँ। ..ख़ैर, मैं आपसे सिर्फ़ एक बात पूछना चाहता हूँ। क्षमा कीजियेगा, क्या आप हम लोगों के अन्य प्रदेशवासी होने के कारण हम लोगों से नफ़रत करती हैं?"

अरुणा ने विस्मित होकर कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं, मि० सिन्हा ?" क्या मैंने आप लोगों के प्रति कभी किसी तरह की संकीर्णता दिखाई है ?"

मि० सिन्हा ने कहा—"क्या कहूँ, कुछ ठीक समझ में नहीं आता। लेकिन मैंने व्यथा पाई है, और उसे अस्वीकार करने से कोई लाभ नहीं। बंगालयों के प्रति बहुत अधिक मुझे फैसिनेशन (आकर्षण) है। बंगालियों पर में मुग्ध हूँ, और उन को श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं योरुप के सभी देशों में घूमा हूँ। मगर बंगाली लड़कियों की-सी कमनीयता कहीं की भी स्त्रियों में नहीं देखी। कन्ट्रास्ट (गुणों की विभन्नता दिखा कर तुलना करना) के प्रति आकर्षण मनुष्य की स्वाभिक वृत्ति है। जान पड़ता है कि इसीसे मुझ-जैसे रूखे लोग भी बंगाली लड़कियों के प्रति इतने आकर्षण का अनुभव करते हैं।—जरा बैठिए न, मिस चौधरी। आपसे जरा देर बात कर लूँ।"

अरुणा ने कहा—"आप क्या यह कह सकते हैं, कि मैं आप लोगों से एक मित्र की तरह नहीं मिलती-जुलती ?"

सिन्हा ने कहा—"लेकिन मन तो और भी अधिक चाहता है, मिस चौधरी। हठीला मन-क्या कोई युक्ति-तर्क मानता है ? यह क्या, आप उठ क्यों रही हैं ? अच्छी बात है, मैं ही जाता हूँ। अपराध हुआ हो, तो क्षमा कीजिएगा। लेकिन क्या यह आप भूल जायेंगी, कि मैं भी आपके भक्तों के दल में हूँ ? अच्छा, नमस्कार !"

सिन्हा के विदा होने पर बड़ी देर तक अरुणा ठगी-सी, स्तम्भित-सी बैठी रही। इतने साधारण परिचय के बाद ही इतनी दूर तक भी बढ़ा जा सकता है, यह अरुणा पहले कभी सोच ही नहीं सकी थी। गपशप या हँसी-दिल्लगी तो गहरी अन्तरंगता न होने पर भी चल सकती है, किन्तु इतनी साधारण जान-पहचान में इतना बड़ा प्रस्ताव करना जबर्दस्ती है, हठ है, बेवकूफी है या अति आधुनिक होने की चेष्टा है। अब तक उमा उसे नहीं खोज पाई। यह सोच कर एक बार उसे उमा के ऊपर भी क्रोध आया। कहीं थक कर ईजी-चेयर पर उमा वगैरा सो तो नहीं गई? कौन कह सकता है, शायद यही हुआ हो।

लाचार होकर, अरुणा को फिर वही मामूली किष्किन्धा कौशल का सहारा लेना पड़ा और तीनों टूटी हुई सीढ़ियाँ चढ़ कर वह स्तम्भित-सी ऊपर आ गई।

किसी ने पुकारा—"अरुणा!"

शरीर पर धोती-कुर्ता, पैरों में सैंडिल। एक इकहरे, लम्बे डील का बँगाली युवक कुतुब मीनार के निम्नतल से अभी-अभी सीढ़ियाँ उतर कर रास्ते की सतह पर आ खड़ा हुआ था। ठीक सामने ही अन्यमनस्क अरुणा को देख कर उस ने नाम ले कर पुकारा

अरुणा चौंक पड़ी, घूम कर, युवक को देखते ही, कई सेकेंड तक अवाक् खड़ी रह गई। फिर बोली—"मणीश दादा! तुम यहाँ कब आये? घूमने-फिरने आये हो क्या?"

मणीश ने कहा—"सेक्रेटरियेट में नौकरी मिल गई है।"

अरुणा ने पूछा—"किस डिपार्टमेंट में ?"

"इकानमिक प्लैनिंग के आफ़िस में, मुझे यहाँ आये लगभग तीन महीने हुए। माँ जी भी साथ आई हैं।"

"और तुम तीन महीने के अरसे में मुझे एक बार सूचना भी नहीं दे सके ?" अरुणा ने आँखों की पलकें ऊँची कर के उलाहना दिया।

मणीश ने अप्रतिभ हो कर कहा—'मैं जानता था कि तुम मिसेज मलहोत्रा के कॉलेज में हो। लेकिन किस तरह तुम्हें ख़बर दूँ, यह मैं सोच नहीं पाया। लड़कियों के स्कूल-कॉलेज में पता लगाना बड़े झंझट का काम है।"

अरुणा ने व्यंग्य के स्वर में कहा—"हाँ, बड़े झंझट का काम है, साहब !....अच्छा, नई दिल्ली में कहाँ रहते हो ?"

"नम्बर ३६, बेंटिंक स्क्वायर में। सी-क्लास का एक घर तक़दीर से मिल गया, नहीं तो माँ के कारण मुश्किल में पड़ना पड़ता। दिल्ली में मकान पा जाना कोई सहज बात नहीं है।"

अरुणा ने पूछा—"कितनी तनख्वाह मिलती है, मणीश दादा ?"

"तीन सौ।"

"वाह, तब तो बाक़ायदा बड़े आदमी हो गये हो ! अब तुम निश्चय ही कम्यूनिस्ट होना न चाहोगे।" अरुणा की आँखों में शरारत की हँसी थी।

मणीश ने कुछ लज्जित हो कर कहा—"कैसी बातें करती हो ?"

कलकत्ते में अरुणा के घर के पास ही किसी समय मणीश रहता था। मणीश की विधवा माता ने प्रायः अपना सर्वस्व बेच कर एक मात्र पुत्र को कॉलेज में पढ़ाया था। मणीश ने भी इस त्याग की क़दर की। मैट्रिक से ले कर बी० ए० तक सभी परीक्षाओं में उसे ऊंचे दर्जे में पास होने के कारण स्कालरशिप (छात्रवृत्ति) मिली। एम० ए० में अर्थ-शास्त्र में सब प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करके यह एक-दम प्रथम हुआ। गत दस वर्ष के प्रथम श्रेणी के प्रथम स्थान का सारा रेकार्ड उसने तोड़ दिया।

इसका पुरस्कार भी उसे कुछ बुरा नहीं मिला। साढ़े तीन साल के लम्बे समय तक बेकार रहने के बाद कलकत्ते के ही एक सरकारी कॉलेज में उसे एक लेक्चरार की नौकरी नसीब हो गई! वहाँ सिर्फ चार साल नौकरी करने के बाद ही उसका वेतन बढ़ कर पूरा सौ रुपया हो गया। इसके बाद गवर्निङ्ग बाडी के सदस्यों ने मणीश की इस अभूत-पूर्व तरक्क़ी और श्री वृद्धि पर हर्ष प्रकट कर के अगले पाँच वर्षों के लिए उसे वेतन-वृद्धि के प्रति उदासीन रहने का उपदेश देते हुए, प्रस्ताव पास कर दिया।

अरुणा को अभी तक इतना ही मालूम था। सौ रुपये से तीन स रुपये वेतन हो की अचरज में डालने वाली बात एक मिनट पहले भी वह नहीं जानती थी।

अरुणा ने मणीश से पढ़ाई में बहुत मदद ली है, अनेक बातें पूछी और समझी हैं। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं का सामना होने के पहले दो-तीन महीने तक हर दफे अरुणा ने मणीश को परेशान करके छोड़ा है, यह कहना भी कुछ अत्युक्ति नहीं। उसी मणीश दादा को अकस्मात् सामने देख कर अरुणा सचमुच ही पुलकित हो उठी। जैसे बहुत दिनों के बाद कोई खोया हुआ आत्मीय देख पड़ा हो, ऐसा उसे अनुभव हुआ।

अरुणा ने कहा—"मौसी जी कैसी हैं? एक दिन मैं निश्चय ही उन्हें देखने के लिए आऊँगी।"

मणीश ने कहा—"एक तरह से अच्छी ही हैं। उस स्क्वायर के क्वार्टरों में उनकी अवस्था की और भी अनेक स्त्रियाँ हैं। इसके सिवा पास ही काली जी का मन्दिर और बिड़ला जी का लक्ष्मी-नारायण का मन्दिर भी है।"

अरुणा एकाएक पूछ बैठी—"ब्याह किया?"

मणीश ने कहा—"ना। 'वाह, अगर ऐसा कुछ होता, तो क्या तुम न जान पातीं?....तुम शायद अपने कॉलेज से पिकनिक में आई हो?"

अरुणा ने कहा—"नहीं, मैं अपनी सखी के साथ आई हूँ। उसके पिता ने एक बहुत बड़ी पिकनिक-पार्टी की व्यवस्था की है। उन्हीं लोगों ने मिसेज़ मलहोत्रा की अनुमति ली और मुझे भी साँस लेने का मौक़ा मिल गया। क्या तुम यहाँ अकेले ही आये हो?"

मणीश ने कहा—"कई बन्धु-बान्धव भी साथ हैं। वे सब कुतुब के ऊपर गये हैं। मैं पहले दो दफ़ा ऊपर जा चुका हूँ, इसलिए नहीं गया। कुतुब के चारों ओर घूमना मुझे अच्छा लगता है। इसके विभिन्न दर-दालानों में, अनेक चबूतरों में, अनेक दफ़्तरों में किसी समय काम-काज का कितना ही शोर-गुल और गुञ्जन रहता होगा। कितने ही सैनिकों और सामन्तों ने कूच की क़वायद भी की होगी, कितने ही बादशाह...." कहते-कहते मणीश रुक गया। सामने नज़र पड़ते ही वह कह उठा—"यह कौन हैं? मिस्टर मीरचन्दानी हैं न? जान पड़ता है, इधर ही आ रहे हैं!"

अरुणा ने भी उधर देखा, दूर पर लौह-स्तम्भ के पास से निकल कर मीरचन्दानी हक्का-बक्का-सा तेजी से दौड़ता आ रहा था। अरुणा को उधर देखते ही मीरचन्दानी प्रबल उत्साह के साथ हाथ हिलाता हुआ और भी तेजी से आगे बढ़ने लगा।

मणीश ने कहा—"अब मैं जाता हूँ, अरुणा।" उसके मुख पर भय का भाव व्यक्त था।

अरुणा ने कुछ विस्मित होकर कहा—"क्यों?"

मणीश ने कहा—"मि० मीरचन्दानी आ रहे हैं।"

अरुणा बोली—"क्या तुमसे उनका परिचय है?"

"हाँ, वही तो हम लोगों के अफ़सर हैं।"

"तो इससे क्या हुआ?"

मणीश ने कुछ हकलाते हुए कहा—"मैं हूँ...मैं किरानी हूँ न...."

अरुणा ने विस्मित होकर कहा—"किरानी! तुमने अपनी तनख्वाह तो तीन सौ रुपये बताई थी न ?"

मणीश ने कहा—"मैं टेकनिकल असिस्टेन्ट हूँ। मेरा गजेटेड रैंक नहीं है न। गजेटेड रैंक न होने से सभी लोग किरानियों में शुमार किये जाते हैं, तनख्वाह चाहे तीन सौ मिलें, चाहे पाँच सौ। यानी अफसरों के साथ हम लोगों का.......अच्छा...... अब मैं..."

मणीश ऐसा भीत-संकुचित हो उठा, कि अरुणा चकित रह गई। उसने करुण दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—"अफ़सर और किरानी के काम में क्या अन्तर है, मणीश दादा ?"

मणीश ने कहा—"अन्तर ? अन्तर यही है, कि किरानियों को ही सब कुछ करना पड़ता है। वे ही आफ़िस का सब काम करते हैं। और . "

अरुणा बीच ही में कह उठी—"और अफ़सर लोग क्या करते हैं ?"

मणीश ने कहा—"वे दस्तख़त करते हैं। हाँ और भी फ़र्क़ है। दाहनी तरफ़ दस्तख़त, बाईं तरफ़ दस्तख़त, इस प्रकार के और भी फ़र्क़ हैं। लेकिन...अरे, वह मि० मीरचान्दनी आ गये। अब मैं..." कह कर डरे हुए मणीश ने जैसे ही जाने के लिए पैर बढ़ाया, वैसे ही अरुणा ने उसका हाथ जोर से पकड़ लिया।

मीरचान्दनी कुछ फ़ासले से ही चिल्ला कर कहने लगा—"आप यहाँ हैं, मिस चौधरी? कहाँ ग़ायब हो गई थीं? आप की सहेलियाँ दुनिया-भर में आपको ढूँढती फिर रही हैं...हलो, मित्तिर (मणीश 'मित्र' था)! तुम यहाँ कहाँ?"

मणीश ने सिर झुका कर कहा—"गुड मार्निंग, सर!... जरा घूमने...कई मित्रों के संग...अरुणा, मिस राय चौधरी.... मैं अब चलता हूँ। अरुणा, एक दिन तुम्हारे यहाँ टेलीफ़ोन...." इसी तरह असंलग्न भाव से घबराये हुए स्वर में मणीश ने बात की।

मीरचान्दनी ने उधर विशेष ध्यान न देकर अरुणा को लक्ष्य करके कहा—"अब देर न कीजिए, मिस चौधरी आपको (उपस्थित) करके मैं अपने मित्रों की कृतज्ञता प्राप्त करना चाहता हूँ। ओह, कितनी देर से हम लोगों से घुड़दौड़ कराकर आपने छोड़ा।"

भागने के लिए उत्सुक मणीश का हाथ और भी जोर से पकड़ कर, अरुणा ने कहा—"आप जरा आगे बढ़िए, मीर-चान्दनी साहब। मणीश दादा से बहुत दिन के बाद भेंट हुई है। जरा बात करके मैं अभी आती हूँ।....हाँ, तो मणीश दादा और क्या फ़र्क़ है, सो तो तुमने बताया नहीं। अफ़सरों के साथ एक ही बाथ-रूम (स्नान-गृह) का व्यवहार कर सकते हो?"

: ८ :

लंच के बाद निमन्त्रित लोग अलग-अलग टुकड़ियों में होकर कोई छाँह में, कोई धूप में और कोई टूटे हुए स्तूप के पास जा बैठे। वहीं उन्हें पीने के लिए 'काफी' दी गई।

उमा की सब सहेलियाँ सनावर के पेड़ों के नीचे खण्डित खम्भों के ऊपर जा बैठीं और भी अनेक आदमियों के मन में वहाँ जा कर बैठने की इच्छा बहुत जोर मार रही थी, किन्तु वहाँ बैठने वालियों का मुँह न पा कर, उन्होंने ऐसे स्थान छाँट लिए, जहाँ से अनायास ही लड़कियाँ दिखाई देती रहें। केवल ऐमरजेन्सी कमीशन पाने के कारण गर्वित लेफ्टिनेंट छोकरे ने उन लड़कियों की प्रकृति को ठीक-ठीक न जानने के कारण अब भी आशा नहीं छोड़ी थी, वह बहाने बनाकर, उनके आस-पास ही चक्कर लगा रहा था।

कुछ दूर पर एक स्तूप की आड़ में आई० सी० एस० मिस्टर गुप्ता, अपनी तरुणी स्त्री को लिए बैठे हैं। मिस्टर गुप्ता कभी अपनी स्त्री को आँखों से ओट नहीं होने देते। जिन की अवस्था

प्रौढ़ हो चली है, ऐसे अतिथि डाक-बँगले के बरामदे में ही बैठे काफ़ी पी रहे हैं।

श्रीवास्तव ने एक लम्बी साँस छोड़ कर कहा—"ये लड़कियाँ हम लोगों से इस तरह दूर-दूर क्यों रहती हैं, कुछ बता सकते हो, मि० सिन्हा ?"

सिन्हा ने उदासीनता के साथ कहा—"लड़कियों में मेरा कुछ भी इन्टरेस्ट (दिलचस्पी) नहीं है। बल्कि मैं तो उनका दूर रहना ही अच्छा समझता हूँ।"

कुशलचन्द अरोड़ा ने हँस कर कहा—"एकाएक यह उदासीनता कैसी, मि० सिन्हा ? जीवन से वैराग्य हो गया है क्या ? मैं तो सिम्प्ली फ्रेट कर रहा हूँ (परेशान हो रहा हूँ)।"

मीरचन्दनी ने पूछा—"फ्रेट ! क्यों, भाई ?"

कुशलचन्द ने कहा—" 'आई एम अंडर ए प्लेज टू बिहेव' (मैं संयत रहने की प्रतिज्ञा से बँधा हुआ हूँ)। यह मास्टर का-सा अनुशासन तो जरा देखो, और मजा यह है, कि वह है मेरी छोटी बहन !"

"हद से बाहर जाने की कोशिश तो नहीं की थी तुमने ?" मि० सिन्हा ने कहा।

कुशलचन्द ने कहा—"मन के अनुसार कुछ करने का चान्स ही कब मुझे मिला, जो हद से बाहर जाता ? आई वंडर (मुझे आश्चर्य है), हम लोग पिकनिक में क्यों आये हैं ?......तुम्हारी हालत भी तो कुछ अच्छी नहीं देख पड़ती, बनर्जी बाबू। छिपा-

छिपा कर नज़र कहाँ दौड़ा रहे हो ? आई से, अगर कुछ करना हो, तो जल्दी करो। देर की नहीं, कि माल हाथ से निकल गया। ख़तरे की बात तो तुमने मीरचन्दानी के मुँह से सुनी ही होगी ? न जाने कहाँ से एक दूसरा बँगाली छोकरा आ गया है।

मीरचन्दानी ने गम्भीर भाव से कहा—"उसे इतना सम्मान दे कर बढ़ाओ नहीं। वह क्या इस सम्मान के योग्य है ? ही इज़ ए मियर क्लर्क (वह महज़ एक क्लर्क है)।···मेरे दफ़्तर में काम करता है।"

कुशलचन्द ने बनर्जी से कहा—"लेकिन याद रखिए, बनर्जी बाबू, प्रेम का देवता अंधा होता है। पहले से होशियार रहना ही अच्छा है, नहीं तो वह अगर किरानी और अफ़सर के फ़र्क़ को न माने तो ?"

श्रीवास्तव ने सन्नाटे में आकर कहा—"गाड् ! यह भी क्या सम्भव है ?"

बनर्जी ने भी गम्भीर हो कर एक प्रतिष्ठित पुरुष के लहजे में कहा—"कम-से-कम मेरी इतनी तो इज्ज़त करो, कि मुझे एक क्लर्क के मुक़ाबले में न खड़ा करो। यह तो परले सिरे की बेरहमी होगी।"

मीरचन्दानी ने अत्यन्त दुःखित भाव से कहा—"फिर भी, यू नो, मिस राय चौधरी ने मेरे क्लर्क के सामने ही मुझे अपमानित करके छोड़ा। कह दिया—'आप आगे बढ़िए, मैं इनसे बात करके आती हूँ।' तुम नई दिल्ली भर में कहीं ऐसा अद्भुत

आचरण इमेजिन (कल्पना) कर सकते हो ? यह अगर गाल पर थप्पड़ मारना नहीं, तो और क्या है ?"

सिन्हा ने कहा—"कुछ खयाल न करो, मीरचन्दनी साहब। यह बचपन के स्नेह का केस भी हो सकता है। मुमकिन है कि वह नौजवान मिस चौधरी का बचपन का साथी हो।"

श्रीवास्तव ने विस्मय के साथ कहा—"लेकिन इस कारण एक अफ़सर का ऐसा अपमान ? कम-से-कम नई दिल्ली का तो यह एटीकेट (शिष्टाचार) है नहीं। आई से, बनर्जी, तुम्हारे कलकत्ते में क्या अफ़सर लोगों का सम्मान करने का यही रिवाज है ?"

बनर्जी ने कुछ कुंठित स्वर में कहा—"कलकत्ता कुछ—उसे क्या कहते हैं—अन-सोशल जगह है। वहाँ किसी का भी विशेष सम्मान नहीं किया जाता। हाँ, अगर कोई किसी विशेष दिशा में, विशेष क्षेत्र में नाम कर सके या प्रतिभा दिखा सके, तो और बात है।"

श्रीवास्तव ने आश्चर्य से स्तम्भित-सा होकर कहा—"और यह सरकारी गजट में छप जाना क्या कुछ भी नहीं है ? तुम्हारा कलकत्ता अद्भुत जगह है !"

क्रमशः धूप ढल चली, कुतुब मीनार के सामने के दूब-भरे हरे मैदान में उनकी लम्बी छाया पड़ने लगी। चारों ओर जो भग्नावशेष हैं, उनके बीच से विस्मृत प्राचीन युग की आब-हवा अपने को प्रकट करने लगी। ताँगों या बस में बैठ कर जो लोग कुतुब की सैर करने आये थे, उनमें से अनेक बिदा हो रहे हैं।

उधर कुछ नई दिल्ली के विलास-प्रिय नर-नारी मोटर पर चढ़ कर इधर हवा खाने के इरादे से आये हैं। उनमें से कुछ मिस्टर अरोड़ा और उनके निमन्त्रित अतिथियों के परिचित निकले। जन-संख्या के लिहाज से नई दिल्ली छोटी जगह है। 'सोसाइटी' के प्रायः सभी लोग आपस में परिचित हैं।

अरुणा ने मणीश को खड़ा देखकर कहा—"वाह! मणीश दादा, यहाँ मुँह बाये खड़े हो! पास आ कर मुझे पुकार लेने में क्या हर्ज था? मैं न देखती, तो इसी तरह खड़े रहते?"

मणीश ने अप्रतिभ हो कर कहा—"यह क्यों, यह क्यों? यानी यहाँ सब अफ़सर लोग हैं, लड़कियाँ हैं...।"

अरुणा ने हताश हो कर कहा—"तुम होपलेस हो, मणीश दादा! यह क्या सनक तुम को सवार है, बताओ? अफ़सर, अफ़सर, अफ़सर! भाड़ में जाय तुम्हारी नई दिल्ली और चूल्हे में जायँ तुम्हारे अफ़सर! बैठो यहाँ। मैं तो यही सोच रही थी, कि अफ़सरों के डर से तुम मुझ से मिले बिना ही भाग गये।"

"तुम भी कैसी बातें करती हो?" कुछ लज्जित होकर मणीश ने कहा।

जिस स्तूप को कुतुब मीनार के अनुकरण पर एक अन्य मीनार बनाने की व्यर्थ चेष्टा कहा जाता है, उसके पैरों के पास ही एक सीढ़ी के ऊपर अरुणा बैठी है। बहुत दूर पर जँगल की रेखा के सिरे पर बहुत बड़ा चन्द्रमा का बिम्ब अभी-अभी झाँकने लगा है। उसका एक कोना कुतुब मीनार की आड़ में पड़ गया

है। अरुणा के दल के लोग संगीत आदि की व्यवस्था करने में लगे हैं। सुमति मीरचन्दानी और मालती सक्सेना, दोनों ही अच्छा गाती हैं। लड़कों के दल में से भी कोई-कोई गायेगा। अरुणा के नाच के लिए एक ज़बर्दस्त माँग उठी थी। यहाँ तक कि उत्साही भक्तों ने मि० अरोड़ा को पकड़ा और उनसे अरुणा से यह प्रस्ताव करा कर छोड़ा। इस अनुरोध को टालने का जब और कोई भी संगत उपाय न रहा, तब अरुणा को एकाएक एक उपाय सूझ गया, वह सहसा कह उठी—"वाह, यह कैसे होगा? तब तो आप लोगों में से कोई भी हमारे बार-चैरिटी के शो का टिकट नहीं ख़रीदेगा। पहले ही मैं अपना नाच दिखाऊँ? तब मिसेज़ मलहोत्रा मुझे किसी तरह क्षमा नहीं करेंगी, किसी तरह नहीं। मेरा नाच देखने के लिए तो आप लोगों को और सात दिन तक प्रतीक्षा करनी होगी। क्यों, उमा ठीक है न?"

उमा फिर सखी की साहयता के लिए खड़ी हो गई, बोली—"हाँ-हाँ, ठीक तो है।"

कुशलचन्द ने असन्तोष के स्वर में मीरचंदानी के कान में धीरे से कहा—"मेरी बहन एकदम होप्लेस है। शलवार पहनने वाली सब लड़कियाँ ऐसी ही मूर्ख होती हैं। रस का ज्ञान तो इन्हें नाम को भी नहीं होता।"

मि० अरोड़ा अरुणा की बात सुनकर, मुस्कराकर, चुप हो गये। मन-ही-मन यह स्वीकार करके कि कारण में कुछ अधिक सार न होने पर भी युक्ति में कुछ सार है, लोगों ने अपने प्रस्ताव पर

अधिक जोर नहीं दिया। सुमति और मालती, दोनों मन में खुश हुईं। यह समझने के लिए अधिक बुद्धि की आवश्यकता न थी, कि नाच का आकर्षण रहने पर, उनके गाने का आकर्षण प्रति-द्वंद्विता में फीका पड़ जाता।

संगीत के उद्योग-आयोजन और उत्साहपूर्ण गप-शप के बीच मौक़ा पाकर, अरुणा उस जगह से खिसक आई। सीढ़ी पर से ही मणीश देख पड़ा। मणीश और उसके इष्ट-मित्र, सब मेहरौली गांव गये थे। मणीश अरुणा से कह गया था—कि वह अरुणा से मिल कर ही वहाँ से जायगा। आध घनटे तक मणीश चुपचाप खड़ा हुआ अरुणा की राह देखता रहा पास, जाने या उसे बुलाने की वह कोई चेष्टा नहीं कर सका। अन्त में ऊब कर जब वह अपने मन में यह सोच रहा था, कि अरुणा से बिना मिले ही चला जाय या नहीं, उसी समय अरुणा की नज़र उस के ऊपर पड़ गई।

अरुणा ने मणीश के इस संकोच को लक्ष्य किया है। यह औरतों के पास जाने का संकोच नहीं है। कॉलेज में छात्रियों के क्लास में भी मणीश को पढ़ाना पड़ा है। सुन्दर ढंग से बात करने का और शिष्ट-भाव से चलने की कला भी मणीश जानता है। अरुणा ने मणीश के सभी आचरणों में बुद्धि की झलक देखी है, और उस पर ध्यान दिया है। मगर आज अरुणा ने उसका यह कैसा रूप देखा? एक अकारण संकोच, एक निकृष्टता का बोध, पंक्ति-बहिष्कृत या अपँक्तिय होने की एक ग्लानि! नई दिल्ली ने

क्या केवल तीन ही महीने में इस सुपण्डित और उत्कृष्ट विद्वान् अध्यापक के हृदय पर किरानी पद का टीका लगा कर उस की प्रकृति तक को बदल दिया ?

अरुणा एकाएक कह बैठी—"मणीश दादा, कुतुब मीनार का इतिहास जरा संक्षेप में सुना तो दो, मैं भूल गई हूँ।"

अपना उपयुक्त विषय पाकर सहसा अध्यापक उल्लसित हो उठा। मणीश बोला—"इसका इतिहास ऐसा कौन-सा बड़ा है? शायद शुरू में दास-वंश के प्रथम बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ने एक फ़क़ीर के सम्मान में इस स्तम्भ को बनवाना शुरू किया था, लेकिन उसका दामाद इल्तुमिश ही असल में...।"

बस, बस! तुम को अब और मास्टरी करने की जरूरत नहीं!" अरुणा ने एकाएक उसके मुँह तक हाथ बढ़ा कर, उसे रोकने की मुद्रा बनाई।

विस्मित हो कर सलज्ज भाव से मणीश ने कहा—"लेकिन तुमने ही तो सुनना चाहा था?"

अरुणा ने कहा—"आज दोपहर को भोजन के समय तुम्हारे अफ़सर मीरचन्दानी से भी कुतुब मीनार के सम्बन्ध में मैंने प्रश्न किया था। बेचारे के हाथ से एक शीशे का गिलास गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो गया।.....हाँ, मणीश दादा, किरानी और अफ़सर में और क्या-क्या फ़र्क़ तुमने बताये थे? मालदार बाप, चाचा, मामा, मौसेरे भाई, भावी ससुर—इन सब में भी तो फ़र्क़ होता है न?"

मणीश ने कहा—"देखता हूँ, ठट्ठा करने की तुम्हारी आदत अभी नहीं गई।"

अरुणा ने कहा—"मैं और ठट्ठा, दोनों इस दुनिया से एक साथ ही जायेंगे, मणीश दादा!"

मणीश को बस के अड्डे तक पहुँचा कर अरुणा लौट आई। दिन-भर उछल-कूद और शोर-गुल से शरीर बहुत ही थका हुआ लग रहा था, शरीर में सुस्ती-सी छा रही थी।

उज्ज्वल चाँदनी में ऐतिहासिक युग की कारीगरी के भग्नाव-शेष स्वप्न की तरह रहस्य से मंडित हो उठे हैं। कुतुबुद्दीन के बाद कितने ही बादशाह आये और गये, कितने ही अत्याचार और उद्धत उच्छृङ्खलता दिल्ली की छाती पर नंगा नाच नाचती रही। कितने ही ऐश्वर्य और आडम्बर के समारोह, इतिहास के पन्नों के ऊपर, जलूस बना कर निकले, और दृष्टि के बाहर चले गये। आधुनिक काल के हम लोग भी, जो सभ्यता और संस्कृति का गर्व करते हैं, अदृश्य हो जायेंगे। उसी तरह चले जायेंगे, बाद-शाह हुमायूँ का खण्डहर क़िला जैसे नई दिल्ली के सेक्रेटरियेट की ओर करुण दृष्टि से ताकता रहता है, वैसे ही शायद अगले ज़माने के किसी-न-किसी महल की ओर आज-कल के दफ़्तर की विराट् इमारत भी ताकती रहेगी। उस समय के लोग जब हमारा विचार करने बैठेंगे, तब किस बात में सन् १६४० के भारतवर्ष को सन् १२०० के भारतवर्ष से बड़ा कहेंगे? हमने सभ्यता को कौन-सी सुव्यवस्था उपहार में दी है? न्याय की स्थापना में हम

कहाँ तक आगे बढ़े हैं ? युद्ध का दानव इस समय भी पृथ्वी पर उसी ऐतिहासिक काल की तरह का नृत्य कर रहा है, शैतान का नाच, नाच रहा है। बल्कि इस समय तो उसकी नृशंसता सौ-गुनी बढ़ गई है। सभ्यता के इस संकट में भारत कौन-सा समाधान देगा ?

गाँधी ! यही नाम बार-बार अरुणा के मन में प्रभात के शुक्र तारा के समान चमकने लगा। मगर महात्मा गाँधी ने जो कुछ हमें दिया है, उस का मूल्य आँकने का समय अभी तक नहीं आया।

एकाएक सुन पड़ा—"आप यहाँ बैठी हैं, अरुणा देवी !"

अरुणा ने चौंक कर देखा, उसके पास बनर्जी खड़े हैं। वह उठ खड़ी हुई और बोली—"बहुत थक गई थी, जरा विश्राम कर लिया। चलिए, गाना नहीं सुनियेगा ?"

बनर्जी ने कहा—"एक बात कहनी थी, अगर अनुमति दें तो....वाह, कैसा सुन्दर चन्द्रमा निकला है ! क्यों ?"

बनर्जी की आँखों की ओर एक बार देखने के बाद अरुणा को बिल्कुल सन्देह नहीं रहा, कि उस के निकट चन्द्रमा बहुत सुन्दर हो कर ही निकला है। लेकिन यह उसकी समझ में नहीं आया, कि सब लोग आज ही इस तरह चन्द्र-ग्रस्त (पागल) क्यों हो उठे हैं।

बनर्जी भाग्यशाली आदमी हैं, कलकत्ते में छापाखाने का धंधा फेल होने के बाद वह प्रसिद्ध बैंकर और व्यापारी नन्दगोपाल राय

का जूनियर सेक्रेटरी नियुक्त हुआ। वहाँ उसे प्रधानतः बाज़ार से सौदा-सुलफ़ लाने का काम ही करना पड़ता था। अत्यन्त निष्ठा के साथ इस कर्त्तव्य को पूरा करने के कारण राय महाशय उसके ऊपर कुछ अधिक प्रसन्न हो उठे। उस समय वे राजनैतिक क्षेत्र में एक विशेष गुरुत्वपूर्ण स्थान पर अधिकार किये हुये थे। सरकार के यहाँ भी उन की ख़ातिर करने वाले आदमियों की कमी नहीं थी। इसी ज़रिये से छापाख़ाने के सम्बन्ध का विशेष-ज्ञान रखने के बल पर बनर्जी भारत सरकार के दफ़्तर में पहुँच गया। किन्तु वेतन चाहे जितना अधिक और अच्छा हो, पर यह काम केवल युद्ध-काल-भर के लिए है। अतएव बनर्जी अपना अधिकाँश समय एक पक्की और स्थायी व्यवस्था की खोज में ही ख़र्च किया करता है। अरुणा एक धनी पिता की एक मात्र कन्या है। सुन्दरी और सुशिक्षिता तो वह है ही। बनर्जी को ब्राह्मण-कायस्थ आदि जाति-भेद का कुछ विशेष ख्याल नहीं है। समस्या स्वयं अरुणा है।

अरुणा ने व्यंग्य के स्वर में कहा—"चन्द्रमा! कहाँ? चन्द्रमा को मैं फूटी आँखों नहीं देख सकती। ख़ास कर अगर वह बिलकुल सफ़ेद हो उठे। ऐसा गोल-मटोल चीनी मिट्टी के पुतले का-सा मुख भी किसी को भा सकता है?"

बनर्जी ने कहा—"मैं एक इससे भी सुन्दर मुख को जानता हूँ। लेकिन पहले मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ, आप क्या वर्ण-भेद या जाति-भेद मानती हैं?"

अरुणा ने कहा—"मैं वर्ण-भेद क्यों नहीं मानती ? जरूर मानती हूँ। वर्ण-भेद ही सबसे बढ़ कर सत्य है। पृथ्वी के इतिहास में जरा वर्ण-विभेद का प्रभाव देखिए तो। लेकिन बहस मैं करना नहीं चाहती। आप निश्चय ही गोरे-गोरे चन्द्रमा और चाँदनी में रहस्यमय पूरा-काल की स्थापत्य कला का आनन्द लेने के लिए आये है। लीजिए आनन्द। मैं विघ्न नहीं डालूँगी। मैं चलती हूँ। यह भी सुना है, इधर सन्ध्या के बाद बाघ-वाघ का बड़ा उपद्रव रहता है। औरतों से ही उनको बहुत चिढ़ है। उन्हीं के ऊपर उनकी खास नजर रहती है, उन्हीं की तलाश में वे घूमते रहते हैं। लेकिन फिर भी उनसे होशियार रहियेगा।" कह कर एक छोटा-सा नमस्कार कर के फ़ौरन ही अरुणा वहाँ से चल खड़ी हुई।

चाँदनी में उस की विलीन हो रही छाया की ओर ताकता हुआ बनर्जी बेचारा भौंचक्का-सा खड़ा रह गया। चमकीला गोरा-गोरा चन्द्रमा उसकी नजरों से ग़ायब हो गया...।

गाने की महफ़िल के बीच में ही हाथ के इशारे से उमा को पास बुलाकर कुशलचन्द ने चुपके से कहा—"उमा, सच बतला, आज क्या मैंने 'बिहेव' नहीं किया ?"

उमा ने कहा—"खूब किया है, भैया। तुमने तो फुल-मार्क (पूरे नम्बर) पाये हैं। थैंक यू।"

कुशलचन्द ने कहा—"फुल-मार्क पाने पर प्राइज़ (इनाम) देना होता है।"

उमा ने कहा—"क्या प्राइज़ तुम को चाहिए ?"

कुशलचन्द ने कहा—"मेरी मोटर पर ही तुम लोगों को लौटना होगा।"

शरारत की हँसी से आँखें चमकाकर उमा ने कहा—"नाटी ब्वाय! वेरीवेल, चलूँगी। इन सब में तुम को ही सहेली सब से कम नापसन्द करती है।"

उमा ने कहा—" 'यू आर ऐन ऐंजेल' (तू एक फ़रिश्ता है)!" कुशलचन्द खुशी के मारे जोरसे कह उठा। फिर बोला—"शलवार पहनने के लिये अब मैं कभी तुझे कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन हाँ, बीच-बीच में साड़ी भी पहननी पड़ेगी।"

: ९ :

कई दिन से खूब ज़ोर से रिहर्सल चल रही है, २५ नवम्बर को मिसेज़ मलहोत्रा के कॉलेज में युद्ध की सहायता के लिए चैरिटी-शो होने वाला है। अब एक पूरा हफ़्ता भी बाक़ी नहीं है। चार दिन रह गये हैं, अरुणा ने अब तक उधर कुछ ध्यान नहीं दिया, लेकिन अब और अधिक देर करने से काम नहीं चलेगा। नाच सिखाने के लिए एक मेम साहब और कथाकली-नृत्य में उस्ताद एक वृद्ध मद्रासी ब्राह्मण हैं। किन्तु भारतीय भाव-नृत्य का अधिकांश अरुणा को खुद ही अपने मन से सीखना-समझना पड़ता है। सिर्फ आप ही सीखने से काम नहीं चलता, औरों को भी भिखाना पड़ता है। अरुणा के नाच के सम्बन्ध में दिल्ली में ऐसी शोहरत फैल गई है, कि उसे अपने सम्मान और प्रसिद्ध में बट्टा न लगने देने की जिम्मेदारी और ख्याल भी कुछ कम नहीं है। दिल्ली के शौक़ीन समाज की जो स्त्रियाँ इस कला की चर्चा करती हैं, वे घात लगाये बैठी हैं। मौक़ा पाते ही कलकत्ते में सीखी हुई अरुणा की इस विद्या की तीव्र समालोचना करके ही रहेंगी।

टिकट बिकने की व्यवस्था में कोई त्रुटि नहीं रहने दी गई है। भारत सरकार के दफ़्तर में ऐसे अफ़सर कम ही हैं, जो अनुरोध

करने पर टिकट ख़रीदने को राज़ी न होने की हिम्मत कर सकें। मिसेज़ मलहोत्रा का उद्योग भी कुछ मामूली नहीं है। न जाने कितने टिकट बेचने वाले और बेचने वालियाँ उन्होंने जुटा ली हैं। उन लोगों की मोटरें जितना पेट्रोल फूँक रही हैं, उतने टिकट शायद ही वे बेच सके हों। किन्तु युद्ध की प्रचेष्टा में सहायता कर सकने के कारण सब को बड़ा आत्म-सन्तोष है। फ़िनिशिंग स्कूल में पढ़ने के क्लास के बदले रिहर्सल का क्लास होने लगा है। धन एकत्र करना मुख्य उद्देश्य होने पर भी एक बड़ा गौण उद्देश्य भी है। इस अभिनय के उपलक्ष्य में बहुत से राजा-महाराजा और भारत सरकार के पाँच-हज़ारी, तीन-हज़ारी अफ़सर तथा मिसेज़ मलहोत्रा की नज़र में मूल्यवान और भी अनेक आदमी आ रहे हैं, स्कूल के कामों का प्रदर्शन करने के लिए इससे बढ़कर अवसर बहुत कम ही मिल सकते हैं। जब सारी दुनिया में ही बेशुमार प्रचार-कार्य चल रहे हैं, तब मिसेज़ मलहोत्रा ही अपनी संस्था के लिए कुछ प्रचार का काम क्यों न कर लें?

उमा ने कहा—"सहेली, उर्वशी का नाच देखने के लिए, तैंतीसों करोड़ देवता दल बाँध कर आ रहे हैं।"

अरुणा ने मुँह बिचका कर कहा—"स्वर्ग की ख़बर तुझे किसने दी?"

उमा ने कहा—"क्वाँरे कार्तिकेय मोर पर चढ़ कर घर-घर यह ख़बर बाँटते फिर रहे हैं न!" उमा के होठों में दबी हुई हँसी थी।

अरुणा ने कहा—"देखती हूँ, क्वाँरे कार्तिकेयों की संख्या बहुत ही बढ़ गई है! एक-एक करके भाई, तुम लोग उनकी संख्या कम कर दो न!"

उमा ने कहा—"तुम्हीं रास्ता दिखाओ, तो अच्छा हो सहेली। तुम्हारा ब्याह जब तक नहीं हो जाता, तब तक औरों के लिए मौक़ा ही कहाँ है? हाँ, भाई, तुम्हारे मणीश दादा की क्या ख़बर है? फिर उनसे मुलाक़ात-उलाक़ात हुई या नहीं?" उमा के मुँह पर शरारत की हँसी थी।

अरुणा ने कहा—"क्यों, तुझे उन की ज़रूरत है क्या? कह तो खोज-खाज कर ले आऊँ। बँगाली का ब्रेन (दिमाग़) और पंजाबी का बाडी (शरीर)....।"

उमा ने सखी को एक धक्का देकर खीझ की मुद्रा में कहा—"धत्, तू बड़ी मुँह-फट है! उल्टे चोर कोतवाल को डाँटे वाली कहावत क्यों कर रही है? ऊपर से बँगाली के ब्रेन की बड़ाई की जा रही है।

अरुणा ने कुछ लज्जित हो कर कहा—"बँगाली के बाडी की बड़ाई किस मुँह से करूँ? किसी बात की तो बड़ाई करनी ही चाहिए, नहीं तो तुझे श्रद्धा कैसे होगी?"

उमा ने हार न मान कर कहा—"श्रद्धा तो तुम्हारी ही होनी चाहिये। हम लोगों के लिए तो बस 'मिष्टान्नम् इतरे जनाः' होना ही यथेष्ट है।—अच्छा, सच बताओ, सहेली, मणीश दादा के प्रति तुम्हारे मन में कोई कमजोरी तो नहीं है? कुतुब की सैर में उन

के प्रति तुम्हारे पक्षपात को देखकर, हमारी सिन्हा-मीरचन्दानी-श्रीवास्तव एण्ड कम्पनी तो बहुत ही ईर्ष्या से भर गई है। कह तो, मामला क्या है ?"

अरुणा ने कहा—"मामला है तेरा सिर ! मणीश दादा मेरे मास्टर साहब हैं।"

उमा ने शरारत से पूछा—"क्या सिखलाते हैं, भाई ?"

"कान मलना !" कह कर अरुणा ने हाथ बढ़ाया....।

उस दिन तीसरे पहर की चाय पीने के बाद सज-धज कर अरुणा कालिज के गेट के बाहर आई। थोड़ी दूर पर रास्ते के बीच बने हुए घेरे के पास कई ताँगे निष्काम भाव से सवारी की प्रतीक्षा में खड़े थे। अरुणा को देखते ही, उनमें से दो-तीन एक साथ उसकी ओर दौड़े आये। एक पर बैठ कर अरुणा ने कहा—"गोल मार्केट चलो।"

गोल मार्केट और रीडिंग रोड के बीच सेक्रेटरियट के किरानियों के क्वार्टर बने हैं। एक-एक बड़े मैदान को तीन ओर से घेर कर, बैरक के ढंग के बहुत-से मकान बने हैं। देखने में वे ऐसे बेढंगे-से जान पड़ते हैं, कि ख्याल होता है, कि तैयारी के समय ठेकेदार लोग बहुत सिर खपा कर ही उनको इतने भद्दे बनाने में समर्थ हुए होंगे। क़ानून के अनुसार रहने के लिए छोटे किरानियों को जितनी जगह की ज़रूरत होनी चाहिए, उतनी कम जगह तो इन बैरकों में नहीं है, किन्तु कहीं ये घर सुन्दर हो कर बड़े लोगों के घरों से मुक़ाबला करने को न तैयार हो जायँ, इसी लिए

जैसे इनको श्रीहीन कर के ऐसा कुरूप बनाया गया है। किन्तु इतना ही नहीं, इनमें भी किरानियों की मर्यादा के भेद के अनुसार अलग-अलग दर्जे हैं, और हर दर्जे में कट्टर और उदार नाम के दो उप-विभाग हैं। कट्टर का अर्थ है छुआछूत को मानने वाले प्राचीन पंथी और उदार का अर्थ है सर्वभक्षी तथा साहबी चाल-चलन, वेष-भूषा आदि में अभ्यस्त व्यक्ति।

इन अपूर्व स्क्वायरों अथवा गोलघरों के सामने की राह से जाते-जाते अरुणा को बहुत-से साहबी ठाट के लोग भी देख पड़े। उन बैरकों के बरामदे वाले हिस्से में अथवा सामने के खुले मैदान में बहुत-से थके हुए किरानी और उनके परिवार के युवक, ड्रेसिंग गाउन पहने, विश्राम कर रहे थे। वास्तव में अरुणा इससे पहले ही यह लक्ष्य कर चुकी है, कि अनुकरण की प्रवृत्ति नई दिल्ली के बड़े सरकारी नौकरों में ही नहीं फैली हुई है, बल्कि साठ रुपये महीने पाने वाले तीसरे दर्जे के क्लर्क तक साहबी ठाट के ऐसे अभ्यस्त हो जाते हैं, कि देख कर अवाक् हो जाना पड़ता है। पंजाबी किरानी तो सब ऐसे क़ीमती-क़ीमती सूट पहने हैं, कि आँखें फाड़ कर देखते रह जाना पड़ता है और किसी की पोशाक सेकंड हैंड भी नहीं होती। और चाल-ढाल में नई दिल्ली के कट्टर प्राचीन पंथी किरानी तक बहुत जगह ऐसा फैशन दिखाते हैं, कि साहबी ढंग के लोग भी उनके आगे शर्मा जायँ।

एक ही ढंग के बने हुए मकानों के सामने होकर अरुणा का ताँगा आगे बढ़ चला। नई दिल्ली जैसे एक बहुत बड़ा कारखाना

हो और ये स्क्वायर, ये छोटे-छोटे बेढंगे मकान जैसे उस कारखाने में काम करने वाले असंख्य मज़दूरों की बस्ती हो। यहाँ लोग ठसे पड़े हैं। कोई भी आदमी अपनी विशेषता, रुचि और रीति की स्वतन्त्रता और आदर्श की विभिन्नता यहाँ बनाये नहीं रख सकता। एक दूसरे का अनुकरण करता है और दूसरे के साथ लाग-डाँट रखता है। लड़की-लड़के एक ही ढंग की शिक्षा-दीक्षा पाते हैं और एक ही तरह बड़े होते हैं। बाबू लोग किराये के ताँगे पर चढ़ कर दफ़्तर जाते हैं, और अपने-अपने हिस्से का किराया देते हैं। आफ़िस के नामों को संक्षिप्त करके नाम के आदि के अक्षर का व्यवहार करके ये लोग बात करते हैं। कब दिल्ली का 'सीज़न' शुरू होगा या ख़तम होगा, किस सेक्रेटरी ने किस किरानी को किस आदर के नाम से बुलाया था। किस क्लब में किस नाटक का रिहर्सल चल रहा है, कौन अफ़सर कैसी मनमानी कर रहा है, कौन सुपरिन्टेन्डेन्ट क्लर्की की पोस्ट पर अपने प्रदेश के आदमियों को आँखें मूँद कर भर्ती कर रहा है। ये ही सब बातें नई दिल्ली के इस हिस्से में रहने वालों की चर्चा के प्रधान विषय हैं। वास्तव में सारी नई दिल्ली में ही इन्हीं सब बातों का ज़िक्र हुआ करता है, जिन किरानियों का नाम गज़ट में छप जाता है, वे भी इन्हीं सब बातों की आलोचना करते रहते हैं। फ़र्क़ यही है, कि वे ज़रा ऊँची सतह पर उठ कर यह चर्चा करते हैं। उनकी आलोचना में सुपरिन्टेन्डेन्ट की जगह डिपुटी सेक्रेटरी का नाम होता है। नाटक के रिहर्सल की जगह किसी

पार्टी, किसी सामाजिक कलंक अथवा सामाजिक सम्मेलनों की आलोचना होती है, सारी नई दिल्ली का एक ही सुर है...।

"कौन है ? अरुणा ! आओ, बेटी आओ !...रहने दे, रहने दे, बस कर। पैर छूना हो चुका। मन्नी (मणीश) ने जब से आ कर कहा, तब से बस यही सोच रही थी, किस तरह मिलूँ। तुम आप ही आ गईं, रानी बेटी !"—कह कर मणीश की माता आन्तरिक स्नेह और अकृत्रिम आग्रह के साथ अरुणा के दोनों हाथ पकड़ कर खड़ी हो गईं। पड़ोस की एक बहू तीसरे पहर की चाय का काम खतम करके कुछ देर पहले गुणमयी (मणीश की माता) के पास आई थी और कुछ खास-खास तरह की भोजन की सामग्री बनाने की विधि उनसे सीख रही थी। वह विस्मय के साथ मेम-जैसी इस लड़की (अरुणा) की ओर ताकने लगी। नई दिल्ली के कनाट प्लेस में इस ढंग की लड़कियाँ बहुत देख पड़ती हैं, मगर इस तरफ़ उनका आना ज्यादा नहीं होता। फिर सी-क्लास के क्वार्टर में आकर घर की बूढ़ी पुरखिन को पैर छू कर प्रणाम करना, तो 'असम्भव' में ही शुमार किया जा सकता है।

अरुणा ने कहा—"मणीश दादा की हरकत देखी, मौसीजी ? यहाँ आये तीन महीने हो गये, लेकिन इस बीच में ख़बर भी नहीं दे सके ! उस दिन अचानक कुतुब के पास सामना हो गया, तो मुझे मालूम भी हुआ, नहीं तो वे तो शायद कभी भी ख़बर न देते।"

गुणमयी ने हँसकर अरुणा को खाट पर बिठाया और आप भी उसके पास बैठ कर बोली—"यह कोई आश्चर्य की बात नहीं बेटी। लेकिन उसे तुम्हारा खयाल न आया हो, यह बात नहीं है। लेकिन बस यहीं तक। ऐसा डरपोक लड़का है, कि सिर खुजला कर कहता है—'वह एक मेम का कॉलिज है, बड़े आदमियों की लड़कियों का कॉलेज है। अरुणा को कैसे खबर दूँ....?' यह क्या, नलिनी! तुम उठ खड़ी क्यों हुईं? अरुणा से जान-पहचान नहीं करोगी? यह तो मेरी अरुणा बेटी है। नलिनी भी मेरी बेटी है। यहीं पास के घर में रहती है। मेरा बहुत उपकार, बहुत काम करती है। इससे गप-शप न करूँ, तो मेरा दिन ही न कटे। इसका स्वामी भी बहुत भला है। किस आफ़िस में काम करता है, बेटी?"

वह उठने को कर रही थी। रुक कर, अरुणा की ओर देख कर, मृदु मुस्कान के साथ बोली—"यही डी० जी०, पी० टी०, या...ऐसा ही कुछ नाम है। हम मूर्खों के मुँह से तो ये टेढ़े-मेढ़े नाम सही-सही नहीं निकल पाते। मैं तो उसे अपने मन के माफ़िक़ सहज कर के 'झटापटी' आफ़िस कहती हूँ। आप की बहुत-सी बातें मैं मौसी जी के मुँह से सुन चुकी हूँ। हर घड़ी 'अरुणा बेटी, मेरी अरुणा बेटी' कहा करती हैं। पहले कभी आप से भेंट न होने पर भी इसी से आप पहचानी-सी लगती हैं।"

अरुणा बोली—"मौसी, हमेशा से बढ़ा-चढ़ाकर मेरी तरीफ किया करती हैं। सब बातों पर पूरा-पूरा विश्वास करोगी, तो

हताश होना पड़ेगा। अच्छा, यह बताओ, तुमने मौसी से रसोई बनाने का कुछ मन्त्र-तन्त्र भी सीख लिया कि नहीं ? मौसी जी कहती हैं कि वह मन्त्र नहीं, हाथ की सफ़ाई है। लेकिन मुझे तो विश्वास नहीं होता...। मणीश दादा कहाँ हैं ? देख नहीं पड़ते। घर में नहीं हैं क्या ?"

"अभी कुछ देर पहले कहीं गया है। घण्टे-आध-घण्टे में ही लौट आने को कह गया है।" कह कर गुणमयी देवी उठ खड़ी हुईं। बोलीं—"ज़रा बैठो बेटी, मैं अभी आती हूँ।"

"नाश्ता लेने जा रही हैं ? यह न होगा। हम मेम की छात्री हैं। जब देखो, तब नहीं खाने लगती।"—कह कर अरुणा होंठों में हँस दी। फिर बोली—"आप बैठिये, मौसी जी। कितने दिनों से आपको नहीं देखा ? दो साल के लगभग हुआ होगा ? दो वर्ष की बातें आध घण्टे में कहनी होंगी।"

गुणमयी ने कहा—"अच्छा तो है, सब सुनूँगी। लेकिन उस के पहले गरी के लड्डू ले आऊँ, बेटी। बिल्कुल ताज़े हैं, आज दोपहर को ही तो बनाये हैं।"

अरुणा खुशी से छोटे बच्चे की तरह ज़ोर से चिल्ला उठी—"गरी के लड्डू ! नई दिल्ली में ! मौसी जी, एक दर्जन से कम न लाना। वही, सफेद-सफेद लड्डू बनाये हैं न ?"

इसके बाद आध-घण्टे तक ऐसी घनिष्ठ और अन्तरंग बातें होती रहीं, जो सिर्फ स्त्रियों में ही हो सकती हैं। छोटी-मोटी तुच्छ घटनायें और बातें भी आग्रह की दीप्ति से बहुत ही क़ीमती

हो उठती हैं। अरुणा ने घूम-घूम कर घर के विभिन्न कोठों को भी देखा। मणीश की चारपाई पर पैताने स्लीपिंग-सूट (सोने के समय की पोशाक) देख कर तो अरुणा हँसी के मारे जैसे लोट-पोट हो गई। हँसी से रुँधे हुए गले से वह केवल यही बार-बार कहने लगी—"स्लीपिंग-सूट! मणीश दादा का! वाह!!" रसोई के आले में काँटा-चम्मच देख कर भी उसे वैसी ही हँसी आई। कहने लगी—"मणीश दादा काँटा-चम्मच से खाते हैं? आफ़िस जाते समय खाते हैं? शायद हाथ धोने में समय नष्ट होगा, इसलिए? ही-ही! कहाँ गये मणीश दादा? जरा चिढ़ाया भी नहीं जा सका।" मणीश के नये ढँग के जीवन का सब-कुछ देखकर उसे हँसी ही आती रही।

अरुणा ने पूछा—"मौसीजी, मणीश दादा यहाँ भी हर घड़ी पढ़ते-लिखते रहते हैं?"

गुणमयी ने कहा—"नहीं, बेटी, अब उसकी जरूरत ही क्या है? यहाँ लड़कों को तो पढ़ाना नहीं पड़ता। आफ़िस का काम आफ़िस में ही समाप्त हो जाता है। उसके लिए घर में कुछ भी करना नहीं होता। इसके सिवा यहाँ पढ़ने-लिखने का चलन भी कुछ विशेष नहीं है। कलकत्ते में उसके सभी मित्र पढ़ने के शौक़ीन थे। उनकी बातचीत किताबों के ही सम्बन्ध में हुआ करती थी। यहाँ का तरीक़ा ही और तरह का है।"

नलिनी ने कहा—"लेकिन यहाँ भी लाइब्रेरी है, मौसी जी। मणीश बाबू क्या उसके मेम्बर नहीं हुए? महीने में चार आने

देने से ही घर में ला कर किताबें पढ़ी जा सकती हैं। बहुत-सी मजेदार किताबें हैं, जासूसी की किताबें, उपन्यास-नाटक वगैरा।"

अरुणा और गुणमयी, दोनों ने क्षण-भर एक-दूसरे की ओर देखकर आँखें फेर लीं, किसी ने कुछ कहा नहीं।

भोली-भाली नलिनी निर्लिप्त सरलता के साथ कहने लगी—"लेकिन यहाँ किताबें हम औरतें ही अधिकतर पढ़ती हैं। बाबुओं को इतना समय ही कहाँ है? और शक्ति भी उनमें इतनी नहीं है। आफिस में दिन-भर काम करके, साहब की डाँट खाकर, घर आते ही पड़ जाते हैं। जिनमें कुछ अधिक उत्साह है, वे क्लब में जाकर ताश और पाँसा खेलते हैं। इसके सिवा थियेटर का रिहर्सल करना होता है....हाँ, भाई, तुमने कभी बाबुओं का थियेटर देखा है? अगर देखतीं, तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो जातीं। हमारे 'वह' मूँछ-दाढ़ी सफाचट कर के राजकुमारी बन कर जैसे ही स्टेज पर आये, कपड़ा मुँह में ठूँसकर, हँसते-हँसते मेरा तो दम फूल गया...। ओ, मौसी, मणीश बाबू कोई पार्ट लेने के लिए क्या किसी तरह राजी नहीं हुए? राजकुमार का पार्ट तो उन्हें बहुत फबता।"

इसके बाद सहसा बाहर की ओर नजर जाते ही वह डर कर कह उठी—"अरे रे, गजब हो गया! मुखर्जी की जोरू इधर ही आ रही हैं। वे वही बड़े आदमियों की तरह बढ़-बढ़कर बातें सुनायेंगी, घमण्ड और रोब झाड़ेंगी। मैं जाती हूँ, मौसी। चलती हूँ, बहन अरुणा। फिर दर्शन देना।" कह नलिनी तेजी से भाग खड़ी हुई।

: १० :

चर्बी से फूली हुई देह को मामूली कोच के भीतर ठूँसती हुई मुखर्जी की पत्नी ने कहा—"बायस्कोप जाने की सब बातचीत तय हो चुकी है। मैं कपड़ा-लत्ता पहन कर तैयार हूँ और इधर वह ग़ायब। अभी दस मिनट पहले एक पूरा ताँगा करके जल्दी-जल्दी हाँफते हुए आ कर बोले—'इतना और ऐसा जरूरी काम आ पड़ा, कि दम मारने की भी फ़ुर्सत नहीं मिली, अभी छुट्टी पाई है।' मगर मैं भी क्या छोड़ने वाली थी? मैंने कहा 'तो फिर ले चलो कनाट-प्लेस के काफ़ी हाउस में।' जब से शिमले से आई हूँ, इन दो महीनों में साहबों के होटल में एक दिन भी नहीं जा पाई। वह हाथ-मुँह धोने गये हैं। मैंने सोचा, कि इस बीच जरा दीदी को देख आऊँ! छुट्टी ही कहाँ मिलती है? तीन-तीन नौकर और नौकरानी घर में मौजूद हैं, लेकिन जिधर न देखूँ उधर ही कुछ-न-कुछ गड़बड़ जरूर हो जायगी, वह अगर और आदमियों की तरह होते, तो कोई चिन्ता नहीं थी। लेकिन ऐसा साहबी मिजाज उनका हो गया है कि जरा-सी चूक होते ही आफ़त मचा देते हैं, और उनको ही दोष कैसे दूँ? हर घड़ी बड़े-बड़े साहब

लोगों से उनका काम पड़ता है, मिलना-जुलना रहता है। वह सिर्फ नाम के ही अफसर नहीं हैं, नहीं तो और अफ़सरों की तरह वह भी होते, उनमें और इनमें कोई फ़र्क़ न होता, और लड़की भी वैसी ही है। काँटा-चम्मच के बिना वह खा ही नहीं सकती। कॉलेज जाने के लिए नित नई साड़ी चाहिए। क्रीम-पाऊडर का तो कुछ कहना ही नहीं। लेकिन उसे कोई कुछ कह नहीं सकता। मैं भी नहीं। कुछ कहती हूँ, तो तुरन्त वह बिगड़ उठते हैं। कहते हैं, 'मेरी लड़की अगर महीने में बीस-पच्चीस रुपये स्नो और पाऊडर में खर्च कर ही डालती है, तो मैं कुछ मर न जाऊँगा।' सुना तुमने, दीदी? अपने ग्रेड की सबसे ऊँची तनख्वाह पाते हों, तो क्या पैसा इस तरह पानी की तरह बहा दोगे? दुनिया में न जाने कितने लोगों को दोनों वक्त पेट भर खाने को भी नसीब नहीं होता और दुनिया-भर की बात क्या कहूँ, अपने इस स्क्वायर में ही ऐसे घर अपनी आँखों के सामने क्या नहीं देख रही हूँ। जिनमें रहने वाले कम तनख्वाह के बाबू बड़ी मुश्किल से गिरिस्ती चला पाते हैं। लेकिन यह भी है, कि मैं उनसे ग़रीबी चाल चलने को कैसे कह सकती हूँ? शिमले में हर हफ़्ते दो दिन बायस्कोप देखने जाना मेरा बँधा हुआ नियम था। हिंदी या बँगला की कोई फ़िल्म, जहाँ तक हो सका, मैंने कभी नहीं देखी। मैं समझ पाऊँ, चाहे न समझ पाऊँ, फ़िल्में तो बस अँगरेज़ी की ही होती हैं। उन का ठाठ ही निराला होता है।"

और किसी को बोलने का जरा भी मौक़ा न दे कर शिमला से लौटी हुई मुखर्जी की घर वाली बराबर बकती ही चली जा रही थी। कई बार तिरछी नज़रों से अरुणा को भी देख लिया, किन्तु उन्होंने गुणमयी को उसका परिचय देने का भी मौक़ा नहीं दिया। वह जो सोने का बड़ा-सा ब्रोच पहने थी, उसके भीतर की साड़ी के हिस्से को खींचकर, ठीक करके, उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"इस मुहल्ले ही में क्या हम लोग रह सकते? यह तो संयोग ही है, कि तुम लोगों से भेंट हो गई, दीदी। उन्हें तो बी क्लास का घर मिलना चाहिए था। लेकिन क्या किया जाय, युद्ध छिड़ जाने के कारण ऐरे-ग़ैरे कर्मचारी क्या कम आ गये हैं इस नई दिल्ली में? हमारे उनके समय में सरकारी नौकरी मिलना बहुत बड़ी बात थी। ऐसे-वैसे की क्या ताक़त थी कि दिल्ली-शिमला आना-जाना करे? अब वह गौरव कहाँ है? हू-हू करके सब गन्दे नालों का पानी आ घुसा है। बहुत कहते हैं—'अनाड़ी बी० ए०, एम० ए० पास हैं।' ऐसे बी० ए० पास का मूल्य ही क्या है? उनके साथ बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन सरकारी काम तो चलाना ही होगा, शरीर रहे, चाहे जाय। लेकिन मैं होती, तो....हाँ, दीदी, तुम्हारा लड़का दिल्ली में बारह-मासी है न?"

उनका मतलब न समझ पा कर गुणमयी ने आँख उठा कर उनकी ओर देखा।

मुखर्जी की घरवाली ने डिब्बी में से एक पान और तमाखू निकाल कर मुँह में रखते हुए कहा—"मेरा मतलब यह है, कि साल-भर दिल्ली में ही रहेगा या दिल्ली से शिमला और शिमला से दिल्ली जाये-आयेगा ?"

अब की मतलब समझ कर गुणमयी ने कहा—"बारहों महीने दिल्ली में ही रहने की बात तो सुनी है, भाई।"

मुखर्जी की घर वाली ने नाक सिकोड़ कर कहा—"यह तो जानी ही हुई बात है। बड़ा अफ़सर हुए बिना क्या कोई कर्मचारी शिमला-दिल्ली जा-आ सकता है ? उसका सम्मान ही अलग है। मैं तो सोच ही नहीं पाती, कि गर्मियों में आदमी किस तरह इस दिल्ली में रह सकता है। अप्रैल की १०-१५ तारीख़ तक ही यहाँ रहना पड़ता है, उसी में मेरी लड़की की देह में बड़े-बड़े छाले पड़ जाते हैं।"

गुणमयी ने कहा—"लेकिन कितने ही आदमी यहाँ रहते होंगे, बहन ?"

मुखर्जी की घरवाली ने कहा—"रहते क्यों नहीं ? जो रह सकते है, वे रहते हैं। मगर यह गर्मी हम लोगों का शरीर नहीं बर्दाश्त कर सकता। साहब ने उस दफे उन से कहा, मुखर्जी बाबू दिल्ली जाकर जरा आफ़िस देख तो आओ। काम-काज में क्लर्क लोग इतनी ढिलाई क्यों कर रहे हैं ?' सुन कर मैं तो...देखो, दीदी, तुम्हारा नौकर क्या माँग रहा है ? जान पड़ता है, नौकर एक ही रक्खा है। कम तनख्वाह की नई नौकरी है। साठ-सत्तर-

सौ रुपये तक के किरानी तो नौकर ही नहीं रख पाते...। यह गढ़-वाली है शायद ?"

गुणमयी कोई जवाब न दे कर उठ खड़ी हुईं और अरुणा की ओर देख कर बोलीं—"ज़रा बैठो, बैठो। वह क्या माँग रहा है, ज़रा देख आऊँ।" कह कर वे भण्डार की ओर चली गईं।

अरुणा दाँत-से-दाँत दबाये बैठी रही। इस मूर्ख, असंस्कृत, बातूनी औरत के पास क्षण-भर अकेले बैठना भी उसे पीड़ा पहुँचाने वाला प्रतीत हुआ। इस औरत के आने की सूचना पाते ही पड़ोस की बहू क्यों डर कर भाग खड़ी हुई, इसका ज्ञान अब अरुणा को हुआ। वह मन-ही-मन मनाने लगी कि गुणमयी के लौटने में देर न हो। विलम्ब होने पर ऐसा हो सकता है, कि मुखर्जी-पत्नी के प्रति सौजन्य की रक्षा करना उसके लिए कठिन हो जाय। पाँच मिनट के ही परिचय में इस औरत से अरुणा को इतनी घृणा हो गई थी, कि वह उसे असौजन्य दिखाने का भी सम्मान नहीं देना चाहती। अरुणा अपने मन में सोचने लगी, कि नई दिल्ली की किरानियों की बस्ती में इस तरह की कितनी गृहिणियाँ हैं। किरानी के पद पर गर्व करना कुछ कम शक्ति का काम नहीं है।

मुखर्जी की घर वाली अब अरुणा की तरफ़ मुख़ातिब हुईं। बोलीं—"मुझे तो ख़याल नहीं आता, कि तुमको कभी इधर देखा हो, बिटिया।"

"मैं इधर नहीं रहती" गम्भीर, निर्लिप्त भाव से अरुणा ने जवाब दिया।

मुखर्जी की घरवाली ने कहा—"ओह, मिन्टो रोड की तरफ़ शायद रहती हो? सुना है, कि उधर के क्वार्टर यहाँ से अच्छे हैं। बाप शायद दफ़्तर में ही काम करते हैं? पैटर्न (नमूना) कुछ पुरानी चाल का होने पर भी तुम्हारा नेकलिस क़ीमती ही जान पड़ता है। तुम्हारे बाप शायद सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। इस लड़ाई के ज़माने में बहुत लोगों ने अपना काम बना लिया, तरक्क़ी हासिल कर ली। हमारे उनका नाम भी लिस्ट में सब के ऊपर है। भगवान् की कृपा से कोई जगह ख़ाली हुई, तो फिर कुछ कहना नहीं। पचास किरानियों के ऊपर अफ़सर हो जायँगे। देखती हूँ, तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ, मगर पढ़ने से क्या होगा? हमारे वह बिटिया को कालेज में पढ़ा रहे हैं। भगवान की दया से वह कमाते हैं, पैसा ख़र्च करके बड़े घर में लड़की को ब्याह सकेंगे। लेकिन सभी तो वैसा नहीं कर सकते। ब्याह होने पर क्या तुम अँगरेजी-फ़ार्सी में बात कर सकोगी या ऐसे ठाठ-बाट से घूम-फिर सकोगी? जिसमें डी-क्लास के घर की पाकशाला के साथ अपने को मिला कर चल सको। ऐसा...अच्छा, मैं चलती हूँ, बिटिया। वह शायद मेरी राह देख रहे होंगे। दीदी से कहना, अँगरेजी होटल में जाना होगा न, सो ज़रा जल्दी है।" कहती हुई, वे उठ कर चल दीं।

अरुणा सन्नाटे में आकर बैठी रही। मुखर्जी की घरवाली

के सामने उसकी सिट्ट-पिट्टी भूल गई। उसकी सब वाक्चातुरी, सब व्यंग्य करने की निपुणता और बुद्धि को जैसे लक़वा मार गया। बहुत दिनों के बाद अरुणा ने अपने को पूर्णतया असहाय और लाचार समझा। दूसरों को छोटा बनाने का आर्ट इतना त्रुटिहीन हो सकता है, इसकी कल्पना भी वह उससे पहले नहीं कर सकी थी। अरुणा वग़ैरा जो व्यंग्य-विद्रूप करने का अभ्यास रखती हैं, जिस व्यंग्य को वे जानती है, वह बातचीत करने के शास्त्र का बिलकुल ही ऊपरी अलंकार है। मुखर्जी की घरवाली उसे पल भर में पछाड़ सकती है, मिट्टी में मिला सकती है।

गुणमयी जब लौट कर आई, तो अरुणा ने कहा—"इनकी जैसी और कितनी घरवालियाँ इधर हैं, मौसी जी?"

गुणमयी ने इस प्रश्न का मतलब समझ कर और हँस कर, कहा—"ओह मुखर्जी की घरवाली की बात कह रही हो? यह मान लेना पड़ता है, कि इस दुनिया में सभी तरह के आदमी हैं। यहाँ सभी को बहुत ही पास-पास रहना पड़ता है न इसी से लाग-डाँट और ईर्ष्या भी कुछ अधिक है। इसके सिवा अनेक श्रेणी की छाप वाले नौकरिये लोग जब एक साथ रहेंगे, तो थोड़ा-बहुत ऐसा होगा ही। सब ही अपने को दूसरों से बड़ा करके दिखाना चाहते हैं।"

अरुणा ने ज़रा हँस कर, कहा—"और वाध्य होकर एक आदमी दूसरे आदमी को छोटा साबित करने का कोई भी मौक़ा

हाथ से जाने नहीं देता ! है न मौसी जी ? इस आब-हवा में आप किस तरह रहेंगी ? मैं तो एक ही को देख कर हैरान हूँ ।"

गुणमयी ने स्नेह के साथ अरुणा की पीठ पर हाथ रख कर, हंस कर, कहा—"मेरी पगली बेटी ! मनुष्य का मन ऐसी अद्भुत चीज़ है, कि उसके साथ सभी-कुछ फिट बैठ जाता है। कोई चेष्टा ही इसके लिए नहीं करनी पड़ती...। अरे, मन्नी तो अभी तक नहीं लौटा ! वह गया कहाँ ?"

× × ×

ताँगे पर फिर चढ़ कर थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही अरुणा को मणीश देख पड़ा। अरुणा ने ताँगा रोकने को कहा, और चिल्ला कर पुकारा—"मणीश दादा !"

मणीश चौंक कर राह के बीच में खड़ा हो गया। अरुणा को देखकर उसे बिस्मिय हुआ। उसने पास आकर कहा—"अरुणा, तुम इधर कहाँ ?"

अरुणा ने कहा—"वाह रे ! मैं तुम्हारे घर गई थी न। लेकिन तुम तो घर ही में न थे। मौसी ने कहा—'घण्टे-भर के भीतर लौट आयेंगे।....पर....आओ, चढ़ आओ न, मणीश दादा। कनाट-प्लेस तक ज़रा मुझे पहुँचा देना।"

"अच्छा, चलो" कह कर मणीश ताँगे में सामने की ओर, हाँकने वाले के पास बैठने के लिए चढ़ने लगा।

अरुणा ने कहा—"तुम को इतनी कसरत करने की ज़रूरत नहीं, मणीश दादा। पीछे ही आ कर बैठ जाओ। तुम्हारा

जितना वजन है, उससे ताँगा उलटने का कोई डर नहीं है। क्यों न मियाँ ताँगे वाले ?"

ताँगे वाले ने हँस कर कहा—"नहीं, मेम साहब। बाबू जी तो बहुत दुबले-पतले हैं।"

"कमाल हो गया!" मणीश पीछे की सीट पर अरुणा की बग़ल में बैठते हुए बोला—"तुमने मुझे गाड़ीवान की भी दया का पात्र बना कर ही छोड़ा...! तुम्हें आये कितनी देर हुई ?"

अरुणा ने कहा—"लगभग डेढ़ घण्टा हुआ होगा। इसी बीच में सब देख आई। स्लीपिंग-सूट का इस्तेमाल करते हो, काँटे-चम्मच से खाते हो! सुना है, कि एक ड्रेसिंग-गाउन भी ख़रीदने वाले हो! साहब बन गये हो पूरे!"

मणीश ने कहा—"तुम भी खूब कहती हो! एक शौक़ हुआ, तो बस साहब हो गया! क्यों ?"

अरुणा बोली—"पहले तो कभी ये सब शौक़ तुमको नहीं हुए मणीश दादा? तब तो किताबें ख़रीदने के सिवा और कोई भी।"

मणीश बीच ही में बोल उठा—"तब मैं इतने रुपये कहाँ पाता था, अरुणा? किताबें ख़रीदे बिना काम नहीं चल सकता था, इसी से ख़रीदना पड़ता था। एक अध्यापक के लिए यह ख़र्च लाज़िमी था। लेकिन पहले यह सामर्थ्य तो न थी, कि किसी चीज़ का शौक़ हुआ कि बस फ़ौरन वह चीज़ ख़रीद ली। ज़रूरी, ग़ैर-ज़रूरी काम की और शौक़ की बहुत सामग्रियों से ही बहुत दिनों से वञ्चित रहा हूँ। अगर कोई अनावश्यक चीज़ ख़रीद ली हो, तो उसे तुम इसकी एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही समझ लो।"

अरुणा ने एक बार मणीश के चेहरे पर करुण दृष्टि डाल कर मुस्कराते हुए कहा—"मुझे तुम्हारी इस बात से तसल्ली हुई, मणीश दादा। नई दिल्ली में इतना अन्ध अनुकरण देखती हूँ, कि उससे सदा शंकित रहती हूँ....। अच्छा, बताओ, यह जगह तुमको कैसी लगती है? यह नौकरी कैसी लगती है?"

मणीश ने कहा—"जगह तो अच्छी ही लगती है। सड़कें साफ़-सुथरी और चौड़ी हैं। लेकिन कलकत्ते की-सी भीड़ और शोर-गुल यहाँ नहीं है। यहाँ का स्वास्थ्य तो बहुत ही अच्छा है। तुमने देखा होगा, यहाँ का पानी कितना मीठा है। इसके सिवा यहाँ के आदमी भी बहुत अच्छे हैं। इसके पहले मैं यह नहीं जानता था, कि बँगाली इतने बन्धु-वत्सल होते हैं। अपने देश के लोगों से इतना प्रेम रखते हैं और दूसरे देश भाइयों की सहायता करने के लिए इतने उत्सुक हो सकते हैं। कोई नया बँगाली आता है, तो ये तुरन्त ही उसे आत्मीय बना लेते हैं और...।"

अरुणा बीच ही में प्रश्न कर बैठी—"और आफ़िस?"

मणीश ने कहा—"आफ़िस सभी जगह एक-सा होता है। मगर हाँ, क्लर्की तो इसके पहले कभी मैंने की नहीं। अब भी यह मेरे लिए सहज नहीं हुई, अखरती-सी है।"

अरुणा ने मणीश की ओर आँख उठा कर कह—"सहज न हो, तभी कुशल है। किरानी तुम हो नहीं सकोगे, मणीश दादा। सभी को सब-कुछ नहीं सुहाता, तुमको भी यह नहीं सुहावेगा...। दाहिने मोड़ो, ताँगे वाले....! यहीं क्या उतर जाओगे, मणीश

दादा, या घर तक पहुँचा दोगे ? रहने दो, तुम को फिर पैदल लौटना पड़ेगा।

मणीश ने कहा—"हर्ज क्या है ? आज कुछ कसरत ही हो जायगी, स्वास्थ्य की तरक्की ही हो जायगी।"

ताँगा कनाट-प्लेस के वृत्ताकार रास्ते से चल रहा है। बाईं ओर के गोलाकार विस्तृत-पार्क से मिले हुए फुट-पाथ पर नई दिल्ली के फैशनपरस्त, स्वास्थ्याभिलाषी लोग गिन-गिनकर चक्कर लगा रहे हैं। अनेक प्रान्तों और विदेशों की वेश-भूषा में विभिन्न भाषा-भाषियों की भीड़ लगी है। उल्टी तरफ़ रोशनी से जग-मगाती दूकानों के सामने के चक्राकार बरामदे से भी आदमियों का प्रवाह बहता चला जा रहा है। सन्ध्या समय नई दिल्ली के बहुत-से नर-नारी यहाँ पर फैशन देखने और दिखाने आते हैं। सौदे की खरीद-फ़रोख्त तो केवल एक उपलब्ध-मात्र जान पड़ती है क़ीमती रेस्तराँ के आर्केस्ट्रा की मधुर ध्वनियों में युद्ध की सहायता का उद्योग सुनाई देता है। इनमें अँगरेज़ी नाच होता ही रहता है।

ऐश्वर्य और विलास की इस विराट् प्रदर्शिनी के बीच कुछ देर चलने के बाद, स्वप्न के वाहन की तरह अरुणा का ताँगा फिर दाहिनी तरफ़ की सड़क पर मुड़ा। पत्थर की सड़क पर घोड़े की टापों की आवाज़ खटाखट, खटाखट, खटाखट होने लगी। ताँगे की परछाईं कभी लम्बी होती थी, कभी छोटी।

एकाएक अरुणा ने कहा—"मणीश दादा!"

"क्या ?"

"अपने लिए काम चुनने में तुमसे भूल हुई। यह काम क्या तुमको फबता है? यह आब-हवा तुम कैसे बर्दाश्त कर सकोगे? तुम पण्डित हो, तुम ज्ञान की खोज करने वाले हो, तुम्हें व्यक्तित्व पर श्रद्धा है! नई दिल्ली के साथ समझौता करके, उसके मुआ-फ़िक अपने को बनाकर तुम क्या सभी-कुछ खो देना चाहते हो?

मणीश ने कहा—"ज्ञान की चर्चा करके इतने दिन मैंने क्या पाया, अरुणा? किताबें पढ़ीं, विचार किया, लेख लिखे, व्याख्यान देकर ज्ञान बाँटने की चेष्टा की। समाज की व्यवस्था ने क्या कुछ उसका मूल्य दिया? जीवन-धारण के लिए अनेक ज़रूरी चीजें तक संग्रह करने में मैं असमर्थ रहा। कैसी शोचनीय ग़रीबी और व्यर्थता में मेरे दिन बीते हैं!"

अरुणा बोली—"दारिद्र्य में कोई अगौरव या बेइज्जती नहीं है, मणीश दादा। मन की जो सम्पत्ति विचारों का जो ऐश्वर्य और चरित्र की जो निधि और विशेषता तुमने पाई है, मैं समझती हूँ, वह सम्पत्ति, वह ऐश्वर्य इस नई दिल्ली के तीन हज़ार वेतन पाने वाले किरानियों को भी दुर्लभ है। छी, क्लर्की क्या तुम्हारी प्रकृति से मेल खाती है? यह क्या तुम्हारा स्वधर्म है? मीर-चन्दानी, बनर्जी और सिन्हा सरीखे लोगों को सिर झुका कर सलाम करके तुम्हें चलना होगा, यह लज्जा की बात मुझे सब से अधिक पीड़ा पहुँचा रही है।"

नई दिल्ली की चौड़ी सड़क पर, जिस पर आदमी और सवारियाँ विरली ही देख पड़ती हैं, ताँगा तेज चाल से जा रहा

है। ताँगे वाला लगाम को झटका दे कर जीभ और तालू के संयोग से एक विचित्र शब्द कर के घोड़े को दौड़ाने के लिए उत्साहित करता हुआ, कह रहा है—"बस, मार लिया, बेटा। थोड़ा और है, चले चलो।"

खुले मैदान के उस पार की बस्तियों की रोशनी देख पड़ती है। जाड़े की ठण्डी-ठण्डी हवा शरीर में तीर की तरह आ कर लग रही है।

अरुणा ने पूछा—"तुमने वह कालेज की पुरानी नौकरी क्या बिल्कुल छोड़ ही दी? अब क्या फिर लौट कर उस जगह पर नहीं जा सकते?"

"जा तो शायद सकता हूँ, एक साल की छुट्टी ली है" अन्य-मनस्क भाव से मणीश ने कहा—"इसके सिवा यहाँ भी वहाँ से कुछ अधिक तनख्वाह पर एक कालेज में एक खाली जगह के लिए आफ़र है। डेढ़-सौ के लगभग तनख्वाह देना चाहते हैं।"

अरुणा आग्रह के साथ कह उठी—"क्या कहते हो? यह सच है क्या...? तब वह नौकरी क्यों नहीं कर लेते? बेकार देर क्यों कर रहे हो? यही तो तुम्हारे योग्य काम है। खैर, तुमने मेरी सब चिन्ता दूर कर दी, मणीश दादा। उस दिन जब से मैंने कुतुब में तुम्हें मीरचन्दानी से डरते और उसको सलाम करते देखा है, तब से घड़ी-भर के लिए भी मुझे चैन नहीं मिला। उस दिन तो सारी रात नींद ही नहीं आई। बार-बार मन में यही सोचती थी, कि 'छी-छी, मणीश दादा ने अपनी इच्छा से अपने को इतना

छोटा बना लिया !' ख़ैर, अब मुझे शान्ति मिली। बताओ, कब से कालेज की नौकरी पर जाओगे? कौन कालिज है, मणीश दादा?"

मणीश ने दुविधा दिखाते हुए कहा—"सेंट-माइकेल कालेज। लेकिन इस नौकरी के बारे में अभी तक मैंने कुछ निश्चय नहीं किया है, अरुणा। मैं सोच रहा हूँ कि वह नौकरी स्वीकार करना ठीक होगा या नहीं.....।"

अरुणा बीच ही में बोल उठी—"तुमने तो अवाक् कर दिया, मणीश दादा! क्यों, रुकावट काहे की है? यह सब नहीं चलेगा, मणीश दादा। मैं कहे देती हूँ, यह नौकरी तुमको स्वीकार ही करनी पड़ेगी! समझे? यह मैं किसी तरह सह नहीं सकूँगी कि तुम किरानियों की तरह सिर झुका कर चलो, नाक रगड़ो...! ए ताँगे वाले सामने बाईं तरफ़ रोको...। लो, यह अपना किराया...! खुश हुए? ...अच्छी बात...आगई, मणीश दादा। सुनो, परसों हम लोगों का चैरिटी-शो होगा। कल ही किसी जगह से उसका एक टिकट ख़रीद लेना। देखना कि मैं कैसी नाचती हूँ-बिल्कुल भारतीय आध्यात्मिक नृत्य। इस बीच में जितना चाहो, सोच लो। लेकिन अभिनय के अंत में मुझ से मिलकर तुम्हें बताना होगा, कि क्लर्की का लोभ तुमने त्याग दिया। अब मैं तुम्हारा और कोई उज्र नहीं सुनूँगी। बस, तब तक...अच्छा, नमस्ते!" फिर ताँगे से उतर कर अरुणा ने मणीश को लक्ष्य करके हाथ हिलाकर कहा—"टा, टा, मणीश दादा!" और हँस कर, फाटक के भीतर घुस गई।

: ११ :

ऊपर लाल कपड़े पर रूई चिपका कर लिखा था—'गाड सेव दि किंग'। उसके ठीक नीचे कुछ छोटे अक्षरों में लिखा था—'चैरिटी-शो इन एड आव् दि वायसराय्ज़ वार पर्पज़ेज़ फण्ड'। इस के साथ मिसेज़ मलहोत्रा की मूल नीति का मेल मिलाने के लिए दो छोटे केले के पौधे और उन के बीच में मंगल-घट रक्खा था। ऐंगलो-सैक्सन और भारतीय संस्कृति का अपूर्व सम्मिश्रण!

छः बजे शो शुरू होना है, इस समय साढ़े-पाँच बजे हैं। मोटर-के-बाद-मोटर आकर, कतार बाँधकर खड़ी हो रहीं हैं। साड़ी और शलवार की चलती-फिरती नुमाइश शुरू हो गई है। सुगंध से हवा बस रही है। दिल्ली के न जाने कितने कितने बड़े-बड़े आदमी पधार रहे हैं। लाल-सफेद वर्दी पहने चपरासियों को देख कर इन लोगों के बड़प्पन का निर्णय करना होता है। मिसेज़ मलहोत्रा ने बहुत-सी सुन्दरी छात्रियों को अतिथियों की अभ्यर्थना के लिए गेट के पास ही तैनात कर रक्खा है। उन्हें खुद अनेक जगह जा-जा कर देख-भाल करनी पड़ रही है। फिर भी गेट को छोड़ कर अधिक देर तक वह दूर नहीं रहती। वे यह

नहीं चाहतीं, कि किसी बड़े आदमी के आगमन के समय वहाँ अनुपस्थित रहें।

जो थोड़े-से टिकट बच रहे थे, वे भी गेट पर बिके जा रहे हैं। नई दिल्ली के कमसिन किरानी छोकरों का उत्साह भी कुछ कम नहीं है। कोई इस शो के बड़प्पन से आकृष्ट हुआ है, कोई इस मौक़े से लाभ उठा कर, फ़िनिशिंग स्कूल का भीतरी दृश्य देख लेने के लिए आया है और कोई लड़कियों को देखने के इरादे से उपस्थित हुआ है। कॉलेज के रंगमंच की रंगीन दीवार पर बहुत-से फूलों के चक्र जमा दिये गये हैं। स्टेज के नीचे के बल्बों के नीचे, स्टेज के एक छोर से दूसरे छोर तक फूलों की एक अखण्ड लाइन है। सामने के सोफे अभी तक खाली हैं। कोई बहुत बड़े संभ्रान्त व्यक्ति यहाँ आ कर बैठेंगे, ऐसा मालूम होता है, लेकिन उनका नाम और परिचय अभी तक प्रकट नहीं हुआ। लड़कियाँ अन्दाज़ कर रही हैं, शायद वे बड़े लाट साहब की पत्नी हों। कमख़ाब का ड्रापसीन धीमे प्रकाश में झलमला रहा है। सामने की दीवार पर कुछ फ्रेस्को (दीवार के पलस्तर पर बने) चित्र हैं। कालेज की लड़कियाँ स्वयं-सेविका का बैज लगा कर सब जगह देख-भाल करती घूम रही हैं। आपस में छेड़-छाड़, शरारत और हँसी करती हैं, खिल-खिल हँस कर मार्जित, रंजित नाखूनों से शोभित हाथों से मुँह ढँप कर हँसी रोकती हैं।

मिसेज़ मलहोत्रा ने एक बार ग्रीन-रूम में जा कर इधर-उधर देख कर विस्मय के साथ कहा—"अरुणा कहाँ है? वह क्यों

नहीं देख पड़ती ? अभिनय शुरू होने में कुल पन्द्रह मिनट बाक़ी हैं। उसका नाच ही दूसरा आइटेम है। बड़ी अपने मन की लड़की है। जो कहो, वह नहीं सुनती। लड़कियो, कोई जा कर उस का पता लगाओ तो। यह लो, उमा आ गई....। अरे, उमा तेरी सहेली कहाँ है ? जाओ, उसे जल्दी ग्रीन-रूम में लिवा लाओ। देखो, कर्टेन उठने में एक सेकेण्ड की भी देर न होनी चाहिए, मिस विल्सन ! देर हुई तो बड़ी लज्जा की बात होगी। अरुणा के लिए आइटेम तुमने कब दिया है ?"

नृत्य सिखाने वाली मिस विल्सन ने कहा—"एक दम अन्त में दिया है, मैडम। एक अच्छा-सा आइटेम देकर समाप्त करने से अभिनय का एफेक्ट (प्रभाव) अच्छा होता है।"

मिसेज़ मलहोत्रा ने कहा—"खूब किया। मैंने बहुत-सी चिट्ठियाँ और फ़ोन पाये हैं, जिनमें अनुरोध किया गया है, कि अरुणा का नाच अधिक देर तक होना चाहिए। लेकिन एक आदमी को दो से अधिक आइटेम कैसे दिए जा सकते हैं ? और लड़कियों को भी तो चान्स देना होगा। हाँ, भारतीय नृत्य में 'पैराडाइस-लास्ट' का वही 'टेब्लो' होने से....अच्छा, जाऊँ, देखूँ कोई नया आदमी तो नहीं आया।"

अरुणा साज-सज्जा कर रही है। आग की तरह लाल, सुनहरे काम की चौड़ी किनारी की साड़ी है। आँचल में इन्द्र-धनुष के समान सात रंग झलक रहे हैं। शरीर में केयूर, कंकण और अंगद, पुराने ढंग के गहने हैं। दशों उँगलियों में दस सोने की अँगूठियाँ

चमक रही हैं। यह तो आधुनिक नारी का साज नहीं है। भारतवर्ष के पुराने इतिहास से महाभारत के युग से जैसे यह लड़की प्रकट हुई हो।

मणीश दादा जरूर आयेंगे। खूब अच्छी तरह नाच कर अगर उनको आश्चर्य-चकित कर दिया जाय, तो ? नाच-वाच तो मणीश दादा समझते नहीं। वे हमेशा से दिल्लगी कर के कहते आये हैं—"तुम्हारा नाच देवताओं के लिए है ! जब देवता प्रकट हों, तब उनको मोहित कर देना !" आज अगर मणीश दादा को ही मोहित कर दिया जाय, तो ?

अरुणा ने यह सोचते-सोचते चौंक कर आईने में अपने प्रतिबिम्ब को देखा।

मणीश से नौकरी छोड़ने के लिए जब से कहा है, तब से शंका के मारे अरुणा के रोयें रह-रह कर खड़े हो जाते हैं। दारिद्र्य के साथ इतने दिन तक लड़ते-लड़ते जो श्रान्त, जर्जर हो उठा है, उस से अरुणा अनायास ही तीन-सौ रुपये महीने की नौकरी छोड़ देने के लिए कह बैठी! अरुणा इस मामले के भारीपन को धीरे-धीरे समझ पा रही है। उस दिन से, उसी घड़ी से वह इसी बात पर दिन-रात गौर करती रहती है। अगर कहा जाय, कि यही मामला उसकी दिन-भर की चिन्ता और रात-भर का स्वप्न हो उठा है, तो भी कुछ अत्युक्ति न होगी। इस तरह का असम्भव अनुरोध कर बैठना अरुणा का पागलपन नहीं, तो और क्या है ? उसने स्वयं कभी दारिद्र्य की वेदना, अभाव की

ताड़ना नहीं सही। इनकी वेदना और ग्लानि उसके लिए अज्ञात है। नहीं तो क्या वह इस तरह अनायास इतना बड़ा त्याग स्वीकार करने के लिए अनुरोध कर सकती है ?

अरुणा ने बहुत सोचा, पर इसका कोई हल उसे नहीं सूझा। मणीश दादा उसके अनुरोध को अवश्य मानेंगे, यह निश्चत है। अरुणा ने मणीश दादा के स्वर में भी वेदना का बहुत ही स्पष्ट आभास पाया है। सचमुच यह काम क्लर्की, मणीश दादा के योग्य नहीं है। वे शायद बहुत दिन इसे नहीं कर सकेंगे। वे पण्डित हैं, ज्ञानी हैं। यह क्या उनके लायक़ काम है ? लेकिन सबसे बढ़ कर जो बात उसे खटकी, असह्य मालूम हुई, वह यह थी कि उसके मणीश दादा अपने से बहुत ही निकृष्ट आदमी के मातहत कर्मचारी हैं। वे नई दिल्ली के अस्पृश्य हरिजन हैं! सिर्फ़ इसी सेंटिमेंटल (भावुकता-भरे) कारण से क्या अरुणा ने इतना गहरा हठ नहीं किया ?

अपनी ज़िम्मेदारी के गुरुत्व को सोचकर अरुणा शंकित हो उठी। वह सदा से दुलारी और ज़िद्दी लड़की रही है। जीवन में आज तक उसे किसी का मुँह देखकर नहीं चलना पड़ा। अपने अति सूक्ष्म मान-अपमान-बोध के धूमकेतु की पूँछ में बाँध कर, मणीश के बने-बनाये खेल को क्या वह फिर मिट्टी में मिला देना चाहती है ? उसे क्या वह फिर दारिद्रय के भँवर में ठेल देना नहीं चाह रही है ?

पिछली सारी रात अरुणा सो नहीं सकी। किवाड़ बन्द कर के अपनी कोठरी के भीतर टाट की तल्ली की चट्टी पैरों में डाल कर वह अप्रकृतिस्थ-सी रात-भर इधर-से-उधर टहलती और सोचती ही रही है। उसके कुँठित विवेक ने बार-बार उससे प्रश्न किया—"क्या, तुम से यह हो सकता है ? तुम भी क्या यह कर सकतीं ? इस गरीबी में हिस्सा बँटाने का साहस तुम में है ? तुम्हारा स्नेह केवल भाव-विलास के सिवा और क्या है ? तुम इसमें अपने को गौरवान्वित मान सकती हो ?"

रात के पिछले पहर इन प्रश्नों का एक जोरदार जवाब अपने हृदय से पा कर थकी हुई देह लिए वह बिस्तर पर आ कर पड़ रही थी।

उमा ने आ कर पुकारा—"सहेली !"

अरुणा ने कहा—"क्या है, रे उमा ?"

"मिसेज़ मलहोत्रा बेहोश हो गई हैं! दर्शक लोग अपने रुपये वापस माँग रहे हैं। कहते हैं—"यह क्या चालाकी है? अरुणा देवी के नाच का लालच दिखा कर टिकट बेचे हैं। कहाँ है वह नाच ?" कह कर गम्भीर भाव से उमा एक कुर्सी पर बैठ गई।

अरुणा सचमुच चौंक उठी थी। आश्वस्त हो कर बोली—"तू क्या आदमी का दिल चौंका दिये बिना बात ही नहीं कर सकती, दुष्ट पंजाबिन ? क्यों, हुआ क्या ?"

उमा ने कहा—"इसी क्षण ग्रीन-रूम में जाने का हुकम हुआ है।"

"चल ना, मैं तो रेडी हूँ।...यह क्या? तू तो आराम से हाथ-पैर फैला कर जम्हाइयाँ लेने लगी!"

"सहेली!"

"क्या?"

"मैं सोचती हूँ क्यों यह सब प्रादेशिक सकीर्णता का बेड़ा अब भी हमारे देश में वैसा ही टस-से-मस न होने वाला बना है? क्यों नहीं इसे तोड़ दिया जाता? क्यों इतनी बाधा, इतना निषेध अर्थहीन लोकाचार सभ्य मनुष्यों की इच्छाओं का हनन कर रहा है?

"तुझे आज क्या हो गया है? यह सब लेक्चर क्यों दे रही है? भेद-भाव, निषेध, लोकाचार, संकीर्णता यह सब न होता तो क्या होता" अरुणा ने होंठों के कोनों में हँसी झलकाते हुए कहा।

"तो तुम मेरी भाभी होतीं!" कह कर, उमा खड़ी हो कर अरुणा से लिपट गई। उस की दोनों आँखों में आँसू चमक रहे थे...।

अभिनय पूरे जोर से चलने लगा। बहुत तालियाँ पिटीं और 'एन्कोर' हुए। शौक़िया अभिनय की सफलता के सम्बन्ध में जैसे अभिनेता-अभिनेत्रियों के आत्मीय-स्वजन एकमत होते हैं, यहाँ भी उसका व्यतिक्रम नहीं हुआ।

अभिनय प्रायः समाप्त हो आया है। पर्दा खींच दिया गया है, अब अरुणा का नाच शुरू होगा। प्रायः सभी दर्शक उत्सुकता

से गर्दन उठाये स्टेज की ओर देख रहे हैं। सहसा टन-टन कर के घण्टा बजा और कमख़ाब का पर्दा बीच से फटकर इधर-उधर हट गया। द्वापर युग की यमुना का काला जल मृदुल गति से बहने लगा। क़दम्ब के पेड़ों में ढेर-के-ढेर फूल खिल उठे। नूपुर की झंकार सुनाई दे रही है। बहुत-से नूपुर बज रहे हैं। भरी गगरी कमर पर रक्खे, श्री राधिका दौड़ती आई। कान उत्सुक हैं, नयन विह्वल हैं। बहुत दूर से बंशी की ध्वनि उड़ती हुई आ रही है। श्री राधिका कान उठाये, उसे सुनने को आकुल हो रही है। सखियाँ गगरियाँ लिये उनके पीछे दौड़ती हुई आईं। 'अरी राधिका, लौट आ, लौट आ। कुल, मान सब बह जायगा। इस तरह अनजानी बंसी की पुकार सुन कर भटक नहीं। इस तरह भकना ठीक नहीं। हमारी बात सुन राधिका, हमारी बात....।'

कौन कहता है कि यह अरुणा है? यह तो वही युग-युगान्तर की श्री राधिका है। यशोदा नन्दन बंशीधर की आकुल बाँसुरी ने उसे व्याकुल, विह्वल कर दिया है। "जाओ, जाओ, सखियो, घर लौट जाओ। गोपों की बस्ती में सन्ध्या के दीपक नहीं जलाये गये। घर में सास है, झगड़ा करने में निपुण नन्द भी है। यह सब जानती हूँ। किन्तु काली यमुना कैसी टूटती हुई लहरें उठा कर सुर की तरह सहज धारा में बह रही है। क़दम के वृक्ष सुनहरे फूलों से छा गये हैं। मृदु, मंद पवन में मलय-चन्दन की गंध आ-आ कर मेरे मन के भीतर बसी जा रही है। कुल, मान, भविष्य,

इहलोक, परलोक सब-कुछ तुच्छ हो गया है। इस अनजानी बाँसुरी ने मुझे उत्कण्ठित कर दिया है, पागल बना दिया है !"

देह में, उँगलियों में, पैरों की गति में, चितवन में, भौंहों के इशारों में, पलकों के गिरने में, बस यही व्याकुलता की लीला देख पड़ रही है। सब तुच्छ है, सब मिथ्या है, सब बेकार है। केवल बंसी, केवल यह बंसी का सुर ही सत्य है। यह अनन्त है, यह अमृतमय है !

बहुत देर तक इस व्याकुलता का ही नृत्य में अभिनय चलता रहा। नृत्य के अन्त में जो बेशुमार तालियाँ बजीं, पुनः प्रदर्शन के लिए जो दर्शकों की सम्मिलित पुकार उठी, वह पूरे पाँच मिनट बीतने पर भी नहीं थमी।

मिसेज़ मलहोत्रा ने दौड़ते हुए आ कर कहा—"वंडर-फुल, माई गर्ल, वंडर-फुल ! लेकिन जल्दी चलो। एक दफ़ा और तुम को ऐपीयर होना होगा। लोग चिल्ला-चिल्ला कर आसमान सिर पर उठाये लेते हैं।"

अरुणा ने हाँफते-हाँफते कहा—"ना, ना, मिसेज़ मलहोत्रा। मैं स्टेज पर गिर पड़ूँगी। मुझ से अब खड़ा नहीं रहा जाता। मैंने अपना सारा इमोशन (भावानुभूति) खर्च कर दिया।"

मिसेज़ मलहोत्रा ने कहा—तो फिर रहने दो, माई गर्ल। तुम विश्राम करो। मैं जा कर लोगों को समझाये देती हूँ !" कह कर मिसेज़ मलहोत्रा ग्रीन-रूम से बाहर चली गईं।

मिसेज़ मलहोत्रा यह नहीं जानती थीं, कि अच्छा नृत्य करने

के लिए इतना मन लगाने की, ऐसी भावानुभूति की आवश्यकता होती है। चाहे जितनी स्वेच्छाचारी हो, लेकिन अद्भुत नृत्य कर सकती है यह लड़की...!

"मणीश दादा!" अरुणा ने पास आ कर कहा।

मणीश ने कहा—"सचमुच तुमने खूब नाचा, अरुणा! मैं तो सोच भी नहीं सकता था, कि तुम इतना अच्छा नाच सकती हो!"

अरुणा ने कहा—"धन्यवाद!" फिर व्यग्र हो कर प्रश्न किया—"अच्छा, उस बात के बारे में क्या तय किया तुमने?"

मणीश ने विस्मित-सा होकर पूछा—"किस बात के बारे में?"

"वाह रे! अच्छे आदमी हो तुम!" अरुणा के स्वर में अधीरता थी। "तुम क्या वह बात बिल्कुल ही भूल गये? इधर मैं इन दो दिनों तक और कोई बात ही नहीं सोच सकी! अरे, वही कॉलेज की नौकरी स्वीकार करने की बात, भुलक्कड़ बाबू! अच्छे आदमी हो तुम भी!"

व्याकुल भक्तों के दल से बचकर, अरुणा कालिज-कम्पाउण्ड के दूर के निराले हिस्से में मणीश को खींच लाई है। पीछे मिट्टी का ऊंचा-सा टीला है, जिस पर घास उगी है। बाईं तरफ़ एक बहुत बड़ा छतनार पेड़ है, जिसकी छाया अरुणा के पास तक फैली है। पैरों के पास मौसमी फूलों की भरमार है। अरुणा उसी श्री राधिका के वेष में है और उसके स्वर में वही श्री राधिका की व्याकुलता भरी है।

मणीश ने कहा—"वह कॉलेज की नौकरी मैंने मंजूर नहीं की, अरुणा। आज दोपहर के समय प्रिंसिपल को टेलीफ़ोन पर कह दिया।"

अरुणा ने सन्नाटे में आ कर कहा—"यह क्या कह रहे हो, मणीश दादा? नामंजूर कर दी? यह तुमने क्या किया? मैं तो बराबर यही सोच रही थी, कि मणीश दादा ने मेरे अनुरोध से कितना बड़ा त्याग करना स्वीकार कर लिया! मेरी ही चेष्टा से वे क्लर्की के अभिशाप से छुटकारा पा कर, गौरव से दीप्त हो उठे! और वह सब तुमने मिथ्या कर दिया।"

मणीश ने कुछ कुंठित होकर कहा—"बहुत लोगों से सलाह की, अरुणा। सभी मना कर रहे हैं। कहते हैं, अफ़सरी बस एक ही सीढ़ी ऊपर तो है। लगे रहोगे, तो एक दिन....।"

"अफ़सर हो जाओगे, क्यों?" अरुणा के स्वर में तीखापन था। "नई दिल्ली ने अपने खट्टे रस से तुम को भी हज़म कर लिया, यह मैं पहले सोच नहीं सकी थी। तुम को पहचानती हूँ, मुझे यह गर्व था। मेरा वह गर्व आज चूर्ण हो गया। ख़ैर, जाने दो। आशा करती हूँ, तुम्हारी उन्नति अब जल्दी ही होगी। मीरचन्दानी को ज़रा और झुक कर सलाम करने से....।"

अब की मणीश ने अरुणा की ओर आँख उठा कर कहा—"तुम जितना जी चाहे ठट्ठा कर सकती हो, अरुणा। बड़े आदमी की बेटी हो, रुपये-पैसे का अभाव कभी...।"

अरुणा बीच ही में गर्म हो कर कह उठी—"बड़े आदमी की

बेटी, बड़े आदमी की बेटी ! तुम मर्द लोग खाक जानते हो ! अपना भविष्य तक जो बड़े आदमी की बेटी.....खैर, जाने दो ये सब बातें । इस तरह स्वार्थी की तरह जो बुरा उपदेश तुम को दिया था, उस के लिए हो सके, तो क्षमा करो ! विश्वास करो, और चाहे जो करूँ, तुम्हारा अनिष्ट कराने का कोई विचार मेरा नहीं था ..। अच्छा, अब जाती हूँ, मणीश दादा । सभी मेरी खोज कर रहे हैं । लेकिन जरा अकेली रह सकूँ, तो मुझे शान्ति मिले ।" कहते-कहते अरुणा का कण्ठ भर-सा गया । चटपट एक बार आँचल उठा कर, आँखों पर रख कर, अरुणा उसी अन्धेरे बाग के रास्ते से दौड़ती हुई चली गई ।

मणीश बड़ी देर तक सन्नाटे में आ, वहीं खड़ा रहा । क्लर्की करना उसे खुद भी हर घड़ी कांटे की तरह खटक रहा है । घड़ी-भर के लिए भी उसे शान्ति नहीं मिलती । यह जैसे तीन सौ रुपये देकर उसके सारे व्यक्तित्व को सारे सम्मान को खरीद लिया गया हो । फिर भी वह जो टिका हुआ है, उसका कारण यह नहीं है, कि क्लर्की उसे सह्य हो गई है । केवल भविष्य में उन्नति की आशा से ही वह सारा अपमान, अन्त्यज, अछूत होने की सारी बेइज्जती सह रहा है । किन्तु उसके अपने सिवा और किसी को भी यह इतना पीड़ा-दायक हो सकता है, इतना असह्य मालूम पड़ सकता है, इस की कल्पना ही वह नहीं कर सका था और यही नहीं, इस तरह टूटी-फूटी दुर्बोध भाषा में अरुणा ने व्याकुलता क्यों प्रकट की ?

जैसे नींद में कोई सपना देखता है, वैसे ही जाग्रत अवस्था में सपना-सा देखता हुआ मणीश लड़खड़ाती हुई चाल से फाटक से निकल कर सड़क पर आया और सामने जो ताँगा मिला, उसी पर बैठ कर बोला—"गोल मार्केट चलो।"

अरुणा मणीश की छात्रा रह चुकी है, किन्तु क्या वह सदैव छात्रा का वही अर्थ-सा मान कर चली है, जो कोष में लिखा है? उसने मणीश को कितना सताया है, उसने कितना ऊधम किया है, कितना हठ किया है, कितनी हँसी-दिल्लगी की है। उन दोनों के सम्पर्क को मित्रता कहना शास्त्र के अनुसार भले ही ठीक न हो, किन्तु मनस्तत्व का विश्लेषण करने से क्या उसे अस्वीकार किया जा सकता है? अरुणा एक धनकुबेर की लड़की है, मणीश कभी इस बात को नहीं भूल सका। दोनों के सम्बन्ध में यही सबसे बड़ी बाधा थी, सब से बड़ा अन्तर था। इसके बाद ऐसा हुआ कि कालिज की नौकरी करने पर मणीश अरुणा के पास वाले मकान को छोड़ कर, एक दूसरे मकान में चला गया, जो कालेज के पास पड़ता था। अब दोनों का मिलना-जुलना कम हो गया। क्रमशः समय की धूल से ढँकी हुई धुँधली स्मृति के सिवा और कुछ बाक़ी नहीं रहा। मगर तीन साल के बाद कुतुब मीनार के पास अचानक दोनों की भेंट हुई।

ताँगे वाले ने एकाएक ताँगा रोक कर कहा—"बाबू जी, गोल मार्केट आ गया। अब कहाँ चलना होगा?"

"ओह, गोल-मार्केट आ गया!" चौंक कर मणीश ने कहा—"क्यों, ताँगे वाले, काश्मीरी गेट चलोगे?"

ताँगेवाले ने कहा—"काश्मीरी गेट! आपने तो गोल-मार्केट कहा था?"

मणीश ने कहा—"ठीक है। अब काश्मीरी गेट चलने को कहता हूँ। खूब तेज़ चल सकते हो? किराये के अलावा एक रुपया इनाम मिलेगा....। काश्मीरी गेट में जो साहब लोगों का स्कूल है, उसी में चलना होगा।"

"अच्छी बात है" कह कर, ताँगे वाले ने ताँगा मोड़ दिया।

: १२ :

उपर्युक्त घटना घटे एक महीना हो गया। अरुणा ने मणीश की कोई ख़बर न ली। लेकिन मणीश की याद करके वह सहानुभूति-मिश्रित एक अद्भुत वेदना का अनुभव करती है, हृदय में एक टीस-सी उठती है। नई दिल्ली ने कितने सहज में इस महापण्डित अध्यापक को अपने सर्वनाशी दर्शन (फ़िलासफ़ी) में दीक्षित कर लिया है। प्रायः बिना संग्राम किये ही मणीश ने नई दिल्ली के आगे आत्म-समर्पण कर दिया।

नई दिल्ली में आने पर लोग अपनी जातीय पोशाक छोड़ देते हैं, धोती और पाजामे की जगह ट्राउज़र्स पहनने लगते हैं। लेकिन पोशाक में ही नहीं, आचरण में, रहन-सहन में, खाने-पीने में, रुचि में, फ़ैशन में, सोचने-विचारने में और व्यवहार में भी नई दिल्ली अपने बाशिन्दों के ऊपर दासत्व की मोहर लगा देती है। यहाँ भी ऐंग्लो-सेक्सन संस्कृति के साथ भारतीय संस्कृति को मिलाने का हास्यास्पद प्रयास देख पड़ता है। ट्राउज़र्स पहन कर देशी जूता पहनने की तरह। मिसेज़ मलहोत्रा का फ़िनिशिंग कॉलेज नई दिल्ली का ज्वलन्त प्रतीक है।

नई दिल्ली में ऐसी कोई चीज़ या आदमी बिरला ही होगा, जिसमें बनावट न हो, यह कहना अत्युक्ति नहीं। यहाँ घास तक सब्ज़, स्वाभाविक रूप में नहीं उगती। यहाँ का प्रतिष्ठित समाज विलायती समाज का निरर्थक अनुकरण है और अन्य लोग परछाहीं की भी परछाहीं हैं। एक बे-जड़, बे-पेंदी की संस्कृति में नई दिल्ली का मानव-समाज चिपका हुआ है। यह कृत्रिमता, यह बनावट अरुणा को अखरती है, पीड़ा पहुँचाती है। यह शाखा-मृग की वृत्ति अरुणा के लिए जैसे हँसने की चीज़ जान पड़ती है, वैसे ही करुणा भी लगती है। नई दिल्ली के समाज के साथ व्यवहार में इसी कारण वह अपने मन की खीझ को छिपा नहीं सकती थी। मीरचन्दानी, सिन्हा और श्रीवास्तव वग़ैरा इसे एक बड़ा भारी रहस्य मान कर और भी अधिक अरुणा की ओर आकर्षण अनुभव करते थे। सब प्रकार के दासत्व का उन्हें अभ्यास हो गया है, लेकिन कभी कल्पना में भी यह बात नहीं आई, कि यह कृत्रिमता किसी को पीड़ा भी पहुँचा सकती है।

नई दिल्ली की इसी फ़िलासफ़ी से अरुणा ने मणीश को बचाना चाहा था....।

बड़े दिन की छुट्टियों में अभी पाँच दिन की देर और है। अरुणा ने अपने पिता को लिखा है, कि किसी विश्वस्त कर्मचारी को उसे ले जाने के लिए भेज दें। एक बार कलकत्ते का चक्कर लगा आये बिना उसका दम यहाँ घुट कर रह जायगा। यहाँ

का कुछ भी जैसे उसे अच्छा नहीं लगता। सब-कुछ जैसे एक-दम नीरस और विस्वाद हो गया है।

एक दिन तीसरे पहर उमा मोटर लेकर आ उपस्थित हुई। पुरानी दिल्ली के किसी सिनेमा-हाऊस में एक खूब प्रसिद्ध हिन्दी की फिल्म दिखाई जा रही है। अरुणा को साथ लेकर उसे देखने जाने का इरादा है। अरुणा को कहीं बाहर जाने की इच्छा नहीं है, लेकिन उमा को समझा कर टाल सकना कोई सहज काम नहीं है।

उमा ने कहा—"तुझे क्या हुआ है, सहेली, बता तो सही?"

अरुणा ने कहा—"क्यों, सिनेमा नहीं जाना चाहती, इस-लिए? तू जैसी बढ़िया फ़िल्म बता रही है, उससे वहाँ तो भीड़ होगी, उसका खयाल कर के मुझे तो यहीं से परेशानी महसूस हो रही है।"

उमा ने कहा—"चालाकी करके असली प्रश्न को टालो नहीं, सहेली। मैं ऐसी भौंदू नहीं हूँ, कि कुछ समझ न सकूँ। सच-सच बता तो, इधर कई हफ़्ते से तुम इतनी अनमनी और उत्साह-हीन क्यों हो रही हो? किसी के प्रेम-वेम में तो नहीं पड़ गई हो? काव्य, उपन्यास आदि में वर्णन किये गये प्रेमावेश के सभी उपसर्ग, सभी लक्षण तुम में आज-कल हू-बहू देख पड़ रहे हैं।" उमा की आँखों में उस की वही स्वाभाविक, गहरी शरारत की हँसी झलक रही थी।

अरुणा ने ज़रा-सा हँस कर कहा—"उसका मौक़ा ही कहाँ मिलता है, मिस अरोड़ा? कामदेव के अनुचर लोग तो तुम्हीं लोगों के घर के आस-पास चक्कर लगाते रहते हैं। चाय के टेबिल पर बुलाये-बेबुलाये आ उपस्थित होते हैं, चटपट किसी को पसन्द कर लो न।"

"अच्छा-अच्छा। हाँ, सहेली, यह तो बताओ तुम्हारे मणीश दादा की क्या ख़बर है?"

"मणीश दादा की!" सहसा अकारण ही अरुणा चौंक उठी। "क्या करेगी उनका?"

"पूछूँगी?"

"क्या पूछोगी?"

"जो तुम नहीं बतलातीं, सहेली। अच्छा, सच बता तो मणीश दादा से तो प्रेम नहीं हो गया है...? यह क्या, इस तरह क्यों ताक रही हो? मैं अनाप-शनाप, बेसिर-पैर की बातें बक सकती हूँ, लेकिन जो लोग सचमुच सीरियस (गम्भीर) हैं, ऐसे कितने ही आदमियों ने इधर इस सम्बन्ध में जो छान-बीन करनी शुरू कर दी है, उसका क्या करोगी? इसलिए, लाइक ए गुड गर्ल, आउट विथ इट!"

"उमा!" अरुणा का कण्ठ-स्वर उत्तेजना से तीव्र था।

"क्या?"

"मैं एक किरानी के प्रेम में पड़ूँगी? इससे अधिक सम्मान क्या तुम लोग मुझे नहीं दे सकीं? इतना छोटा मान कर ही

क्या नई दिल्ली का समाज मुझ से बदला लेना चाहता है ? तुम लोगों ने मुझे क्या समझ लिया है, ज़रा सुनूँ तो ? तीन-सौ हज़ार पाने वाले क्लर्क के साथ ब्याह करने की भी मैं कभी कल्पना नहीं कर सकती। ऐसा मैं सोच ही नहीं सकती।"

अरुणा को इतना उत्तेजित देख कर, उमा खिसियानी-सी हो गई। वह फ़ौरन पछतावे के स्वर में कहने लगी—"आई एम सॉरी, सहेली। मुझे यह ख़याल न था, कि एक साधारण जोक (मज़ाक) से तुझे इतनी चोट पहुँचेगी.... ....। मुझे माफ़ कर, सहेली।"

अरुणा ने सँभल कर कहा—"दैट्स आल राइट। मेरा जी कुछ दिनों से अच्छा नहीं है, उमा। किसी साधारण-सी बात से ही विक्षिप्त-सी हो उठती हूँ। कुछ ख़याल न करना, बहन......कै बजे हैं ? साढ़े-पाँच। चल, न हो फ़िल्म ही देख आऊँ।"

"डार्लिंग !" उमा ने कहा....।

छुट्टी से दो दिन पहले दोपहर के भोजन के उपरान्त, अरुणा कालेज के फाटक के बाहर आकर ताँगे में बैठ कर बोली—"गोल मार्केट चलो।"

दो दिन के बाद ही वह कलकत्ते चली जा रही है। वहाँ जा कर पिता को अगर राज़ी कर सकी, तो फिर दिल्ली लौट कर नहीं आयेगी। मिसेज़ मलहोत्रा के फ़िनिशिंग स्कूल में जो खिचड़ी संस्कृति बाँटी जाती है, उस पर उसे कोई विशेष श्रद्धा नहीं है। दिल्ली के भी वह सब तरह से ख़िलाफ़ हो उठी है। कलकत्ते की

हवा में उसे मुक्ति का स्वाद मिलता है। वहाँ के सामाजिक जीवन में गणतन्त्र का भाव बहुत दूर तक फैला हुआ है। नौकरी के पैमाने से वहाँ जाति का निर्णय नहीं किया जाता, इज्जत नहीं की जाती।

जाने के पहले मणीश की माता से एक बार मिलने वह जा रही है। कौन जाने, अब कब फिर भेंट हो या न हो? इस मौसी को अरुणा सचमुच बहुत चाहती है। बचपन से ही अरुणा की माता नहीं रहीं। जहाँ भी उसने थोड़ी-सी मातृ-स्नेह की गन्ध पाई है, वहीं वह व्याकुल लोलुपता के साथ दौड़ी गई है और गुणमयी देवी ने भी उसे इस मामले में हताश नहीं किया।

अरुणा को दरवाजे से भीतर घुसते देखते ही—"अरुणा! आओ, बेटी, आओ" कहती हुई, वे खटिया से उठकर खड़ी हो गईं।

घर में चारों ओर सूट-केस और कुछ अस्त-व्यस्त सामान पड़ा हुआ है। किताबें, कपड़े और बर्तन ढेर हो रहे हैं। दो खुले हुए ट्रंकों में कपड़े-लत्ते भरे हुए हैं। दीवार के किनारे दो-एक डलिया और बहुत-सी शीशियाँ-बोतलें रक्खी हैं।

सूट-केस को लाँघते हुए अरुणा ने प्रश्न किया—"यह सब क्या है, मौसीजी? घर बदल रही हैं क्या? शायद कोई अच्छा घर मिल गया?"

गुणमयी ने कहा—"तुम यहीं बैठो, बेटी। मैं ट्रंक को जरा इधर खिसकाये देती हूँ........। नहीं, अच्छा घर कहाँ मिलेगा?

लेकिन अच्छा हो या बुरा, सरकारी घर तो छोड़ ही देना पड़ेगा।"

विस्मय के साथ अरुणा ने कहा—"छोड़ देना पड़ेगा! क्यों?"

गुणमयी ने हँस कर कहा—"सरकारी नौकरी नहीं करेंगे, और सरकारी क्वार्टर पर भी दख़ल किये रहेंगे, यह भी कहीं हो सकता है? पुरानी दिल्ली में एक किराये का मकान मिल गया है।"

"क्यों, सरकारी नौकरी का क्या हुआ?" अरुणा की साँस दूनी गति से चलने लगी।

गुणमयी ने कहा—"अरे! तुम को शायद मालूम नहीं? मन्नी ने तुम को खबर नहीं दी? मैंने तो कई बार उस से कहा था, कि अरुणा बेटी को ख़बर दे आना, नहीं तो वह न जाने कब हमारी खोज में आये और निराश होकर लौट जाय। प्रोफेसरी की नौकरी की है। तो इस में अगौरव या बेइज्जती की क्या बात है......? यह क्या, बेटी, आँख में कुछ पड़ गया क्या? देखूँ, देखूँ!"

"कुछ नहीं। अभी ठीक हो जायगा।" कह कर, अरुणा ने आँचल से आँखें रगड़ते हुए, अपने को सम्भाल लिया। फिर पूछा—"मणीश दादा ने सेक्रेटरियट की नौकरी कब छोड़ी, मौसी?"

गुणमयी ने कहा—"लगभग एक महीना हुआ होगा। आज तो नोटिस की मयाद भी पूरी हो गई। आफिस जाना भी छूट गया। सरकारी नौकरी छोड़ना उचित है या नहीं, इसके बारे में मुझ से पूछ-पूछ कर, पास-पड़ोस के लोगों से भी सलाह ले कर, खूब सोचा-साचा। कालेज की नौकरी में तनख्वाह तो अधिक नहीं है न, बेटी। अन्त में एक दिन आ कर बोला—'कालिज की नौकरी के लिए 'ना' कर आया हूँ, माँ। क्लर्की करने में मुझे बड़ा कष्ट होता है, लेकिन जो ग़रीब है, उसे कष्ट सहना ही होगा, अपमान बर्दाश्त करना ही होगा।' लेकिन कैसा पागल लड़का है! इसके बाद कुछ घण्टे भी नहीं बीतने पाये, कि उसी रात को लौट कर बोला—'माँ, अभी मैं कालेज के प्रिंसिपल के घर गया था। कह आया, कि कालेज की ही नौकरी करूँगा। क्लर्की मुझ से नहीं हो सकेगी। खाने-पहनने का थोड़ा कष्ट अवश्य होगा। सो क्या तुम उसे बर्दाश्त नहीं कर सकोगी?' जैसे मुझको अपने ही कष्ट की चिन्ता हो।"

अरुणा ने पूछा—"मणीश दादा कहाँ हैं, मौसी? दफ्तर में हैं क्या?"

गुणमयी ने कहा—"नहीं, बेटी। शायद बगल की कोठरी में है। थोड़ी देर पहले उसे कोई किताब पढ़ते देखा था। जाओ न, बेटी, उस के पास जा कर बातचीत करो। मैं ज़रा इन सब चीज़ों को ठीक-ठीक कर के रख दूँ। कल ही यह घर छोड़ रही

हूँ। नये घर में जाकर ठीक-ठाक कर लूँ, तो एक दिन तुमको दिन-भर के लिए बुलाऊँगी, बेटी।"

बगल की कोठरी में एक डेक-चैयर पर लेटे, और एक मोढ़े पर पैर रक्खे हुए, गर्म चादर ओढ़े, मणीश पुस्तक पढ़ रहा था। कब अरुणा वहाँ आई, उसे खबर भी नहीं हुई।

अरुणा ने पुकारा—"मणीश दादा !"

"अरुणा !" कह कर, चौंक कर, मणीश ने चट पैर समेट लिये। फिर बोला—"कब आई तुम ? आज कालेज नहीं है, क्या ?"

"रहने दो अपनी मास्टरी" कह कर अरुणा खाली मोढ़े को खींच कर बैठ गई। फिर बोली—"लेकिन यह तो बताओ, तुम क्या हमेशा मेरे साथ शत्रुता ही करते रहोगे ?"

"शत्रुता ! क्यों, क्या हुआ ?"

"मेरे कहने से नौकरी छोड़ कर, उस की खबर भी मुझे नहीं दी तुमने ?"

मणीश ने कहा—"तुम्हारे कहने ही से क्यों ? मुझे ही क्या अच्छी लग रही थी ? और फिर यह कौन ऐसी बड़ी भारी खबर है, कि धूम-धाम से इसका ढिंढोरा पीटा जाय ?"

अरुणा बोली—"देखो, आज तुम तीन हजार पाने वाले अफसर-नामधारी किरानी से भी बड़े हो गये हो ! इस गौरव की बात को मुझ से न कहोगे, तो और किससे कहोगे ?"

"तुम्हारी भी बातें निराली होती हैं। तुम घोर पागल हो।"

अरुणा थोड़ी देर तक चुप बैठी रही। उस की दृष्टि जैसे बहुत-बहुत दूर पर पहुँच गई थी। आम के कोंपल जैसे लाल होंठ काँप रहे थे, लम्बी-लम्बी हाथ की उँगलियाँ दबाई गई उत्तेजना से रह-रह कर काँप उठ रही थीं।

एकाएक वह बोली—"मणीश दादा!"

"क्या?"

"तुम को गरीबी के भीतर घसीट लाई हूँ, इसलिए शायद तुम मुझे बहुत ही स्वार्थी समझ रहे होगे। लेकिन यह बात नहीं है, मणीश दादा, बिलकुल नहीं है। तुम मर्द लोग बड़े अबोध होते हो, कुछ भी नहीं समझ पाते...। मैं भी तुम्हारी इस गरीबी में हिस्सा बँटाना चाहती हूँ . सदैव के लिए, जन्म-भर के लिए इसकी जिम्मेदारी लेना चाहती हूँ।"

"क्या कहती हो, अरुणा? इसका अर्थ क्या है? मुझे यह सब अस्पष्ट पहेली-सा लग रहा है।" कहते-कहते विस्मित, स्तब्ध मणीश चेयर छोड़ कर उठ खड़ा हुआ।

मणीश की आँखों से आँखें मिला कर अरुणा ने कहा—"मर्द ऐसे अबोध होते हैं, कुछ भी नहीं समझ पाते!. अजी जनाब, आपके घर में, आपके पास मैं जिन्दगी-भर के लिए रहना चाहती हूँ। अब समझे आप? जाइए, अपनी माता जी से....।"

मणीश ने गम्भीर हो कर कहा—"अरुणा, किसी उत्तेजना के नशे में कुछ कर बैठने को हठधर्मी कहते हैं। मैंने नौकरी छोड़ दी है, इसलिए तुम्हें क्या इतना बड़ा आत्म-त्याग करना चाहिए? तुम क्या नहीं जानतीं, कि तुम राज-कन्या हो? किसी राजा के घर में तुम को....।"

अरुणा ने भुवनमोहनी हल्की हँसी के साथ कहा—"राज-कन्या हूँ, इसी से तो राजकुमार को पसन्द कर बैठी। यह बीसवीं सदी का मध्य भाग, सभ्यता का युग है न। इसी से सोने और जवाहरात के पैमाने से मैं आभिजात्य का विचार नहीं करती। ज्ञान और बुद्धि को ही, मैं प्रतिष्ठा और आभिजात्य की कसौटी मानती हूँ............। हम लोग अपनी नई राजधानी तैयार करेंगे। वह राजधानी प्रेम की, साम्य की होगी। उस में उच्छृंखला का लेश भी न होगा......। सुनते हो, जी? इस तरह भौंचक्के भोंदू की भाँति न खड़े रहो। सब बन्दोबस्त हो गया। तुम अपनी माता की सम्मति ले लो। बाबू जी की सम्मति प्राप्त करने में मुझे तनिक भी कष्ट न करना होगा। जानते तो हो, मैं उन की दुलारी और हठी लड़की हूँ"

फिर क्षण-भर रुक कर खिलखिला कर हँसती हुई बोली—"मिसेज मलहोत्रा के कालेज की लड़की हूँ न, तो उसका आदर्श नहीं भूल सकी। ब्याह हम लोगों ने स्वयं ही ठीक कर लिया।

अब माता-पिता की सम्मति लेकर उसे पक्का कर लेना चाहिये। ऐंग्लो-सैक्सन और भारतीय संस्कृति का अपूर्व सम्मिश्रण!" कह कर, वाक्यहीन खड़े हुए मणीश की छाती में एक हल्का-सा धक्का दे कर, तुरन्त ही शरारती लड़की की तरह दौड़ कर वहाँ से वह भाग गई।

स्तम्भित, भौंचक्का-सा मणीश वहीं खड़ा-का-खड़ा रह गया।

॥ समाप्त ॥